आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धितायच

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्दभावधाराकी प्रमुख [illegible]

वर्ष–१६ फरवरी–2000 अंक–2

रामकृष्णनिलयम,
जयप्रकाशनगर,
छपरा (बिहार)

उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

स्वामी निखिलेश्वरानन्द, सचिव
रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर
का सस्नेह उपहार

विवेक - शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

फरवरी, 2000

सम्पादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा

वार्षिक ६०/- वर्ष १६ अंक २ एक प्रति ५/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क (२० वर्षों के लिए) ७००/-

सम्पादकीय कार्यालय
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा–841301 (बिहार)
दूरभाष : (06152) 22639

इस अंक में

1. श्रीरामकृष्ण ने कहा है 1
2. सपार्षद श्रीरामकृष्ण वन्दना
–स्वामी वागीश्वरानन्द 2
3. पूर्व प्रेसिडेन्ट महाराज के साथ एक अपराह्न 3
4. जिज्ञासुओं के प्रश्नः
स्वामी रंगनाथानन्दजी के उत्तर 16
5. स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान
–स्वामी शशांकानन्द 20
6. ध्यान में मन क्यों नहीं लगता ?
–स्वामी निखिलेश्वरानन्द 25
7. तत्त्वमसि
–कुमारी ऋचा रश्मि 30
8. समाचार एवं सूचनाएँ 32

विवेक-शिखा के आजीवन सदस्य

१९४ स्वामी चिरन्तनानन्द - रा.कृ.मि. नरोत्तमनगर

१९५ श्री हरवंशलाल पाहड़ा - जम्मूतवी, कश्मीर

१९६ श्री योगेश कुमार जिंदल - दिल्ली

१९७ डॉ. अखिलेश्वर कुमार - कनखल

१९८ श्री अनिल कुमार पूनमचन्द जैन - नागपुर

१९९. डॉ. शीला जैन - बीकानेर

२००. श्री डी.एन. देशमुख - चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)

२०१ सचिव, रामकृष्ण वि. सेवाश्रम - अम्बिकापुर (म.प्र.)

२०३ श्री ओमभक्त बुड़ाथोपी - डाँग, नेपाल

२०४. श्री ए.डी. भट्टाचार्य - भद्रकाली (पं.ब.)

२०५. हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज - छपरा (बिहार)

२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी - कार्याध्यक्ष, गिरिडीह (बिहार)

२०७. श्रीमती निभाकौल - कलकत्ता

२०८. सचिव, रामकृष्ण मिशन - पोरबन्दर (गुजरात)

२०९. सचिव, रामकृष्ण मिशन - राँची (बिहार)

२१२ श्रीमती शुभा कामत - मुम्बई (महाराष्ट्र)

२१३ स्वामी प्रत्यगानन्द - रामकृष्ण मिशन रतुडेन्द्रा होम, चेन्नई

विवेक शिखा की संरक्षक योजना

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' की एक योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये 'विवेक शिखा' के स्थायी 'कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। विवेक शिखा में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे आजीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इसके संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है।

-व्यवस्थापक

संरक्षक का नाम	स्थान	रकम
१. श्रीमती कमला घोष	इलाहाबाद	३,०००/-
२. श्री नन्द लाल सोंटिया	कलकत्ता	१,०००/-
३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा	जम्मूतवी	१,०००/-
४. श्रीमती निभा कौल	कलकत्ता	१,०००/-
५. डॉ० सुशीला अग्रवाल	कर्नाटक	१,०००/-
६. श्रीमती सुभद्रा डाकरार	कलकत्ता	५,०००/-
८. स्वामी प्रत्यगानन्द	चेन्नई	१,०००/-

ॐ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत ॐ

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो !

विवेक - शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख
हिन्दी मासिकी

वर्ष १९ फरवरी २००० अंक २

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

श्री रामकृष्ण ने कहा है.

❖ सच्चिदानन्द ही गुरु के रूप में आते हैं। मनुष्य गुरु से यदि कोई दीक्षा लेता है, तो उन्हें मनुष्य मानने से कुछ नहीं होगा। उन्हें साक्षात् ईश्वर मानना होगा, तभी मन्त्र पर विश्वास होगा। विश्वास हुआ कि सब कुछ हो गया। शूद्र एकलव्य ने मिट्टी के द्रोणाचार्य बनाकर वन में बाण चलाना सीखा था। मिट्टी के द्रोण की पूजा करता था-साक्षात् द्रोणाचार्य मानकर इसी से वह धनुर्विद्या में सिद्ध हो गया।

❖ देखो, अधिक छूतधर्म का आचरण मत करो। एक साधु को बड़ी प्यास लगी थी। भिश्ती जल लेकर जा रहा था उसने साधु को जल देना चाहा। साधु ने कहा, 'क्या तुम्हारी मशक साफ है?' भिश्ती बोला, 'महाराज, मेरी मशक खूब साफ है किन्तु आपकी मशक के भीतर मल-मूत्र आदि अनेक प्रकार के मैल हैं। इसलिए कहता हूँ, मेरी मशक से जल पीजिये, इससे दोष न लगेगा।' आपकी मशक अर्थात् आपकी देह, आपका पेट।

❖ सरल भाव से कहो, 'हे ईश्वर दर्शन दो' और रोओ; और कहो, 'हे ईश्वर, कामिनी-कंचन से मन को हटा दो।' और डुबकी लगाओ। ऊपर-ऊपर बहने से या तैरने से क्या रत्न मिलता है? डुबकी लगानी पड़ती है।

❖ गुरु से पता लेना चाहिए। एक व्यक्ति बाणलिंग शिव की खोज कर रहा था। किसी ने कह दिया, 'अमुक नदी के किनारे जाओ, वहाँ पर एक वृक्ष देखोगे, उस वृक्ष के पास एक भँवर है। वहाँ पर डुबकी लगानी होगी, तब बाणलिंग शिव मिलेगा।' इसीलिए गुरु से पता जान लेना चाहिए।"

❖ एक लड़की का पति आया है। वह अपने बराबरी के युवकों के साथ बाहरवाले कमरे में बैठा है। इधर वह लड़की और उसकी सहेलियाँ खिड़की से देख रही हैं। सहेलियाँ उसके पति को नहीं पहचानतीं। वे उस लड़की से पूछ रही हैं, 'क्या वह तेरा पति है?' लड़की मुसकराकर कहती है,-नहीं।' एक दूसरे युवक को दिखलाकर वे पूछती हैं, 'क्या वह तेरा पति है?' वह फिर कहती है-'नहीं।' एक तीसरे युवक को दिखाकर वे फिर पूछती हैं, 'क्या वह तेरा पति है?' वह फिर कहती है-नहीं। अन्त में उसके पति की ओर इशारा करके उन्होंने पूछा, 'क्या वह तेरा पति है?' तब उसने 'हाँ' या 'नहीं' कुछ नहीं कहा; केवल मुसकरायी और चुप्पी साध ली। तब सहेलियों ने समझा कि वही इसका पति है। जहाँ ठीक ब्रह्मज्ञान होता है, वहाँ सब चुप हो जाते हैं।

सपार्षद-श्रीरामकृष्ण-वन्दना

(धनु-प्रभाती, ताल-कहरबा) - स्वामी वागीश्वरानन्द

✪ जयतु जयतु प्रभु 'रामकृष्ण', जय भव बन्धन-परिहारी।
जयतु 'सारदे' जगजननी जय, त्रिभुवन पावनकारी॥

✪ जयतु 'विवेकानन्द' स्वामि जय, प्रभुलीला सहचारी।
प्रभु मानस सुत कृष्णसखा जय, ब्रह्मानन्द'- बिहारी ॥१॥

✪ 'योगानन्द' 'निरंजन' जय जय, साधुसंघ-हितकारी।
जय 'अद्वैतानन्द' स्वामि जय, एकनिष्ठ व्रतधारी॥

✪ 'प्रेमानन्द' प्रेमधन जय जय शुद्धसत्व-तनुधारी।
'रामकृष्ण-आनन्दशशी' जय गुरुपद सेवाकारी॥२॥

✪ जयतु 'सारदानन्द' सारदा माँ के सेवक द्वारी।
प्रभुसेवक 'अद्भुतानन्द' जय अद्भुत लीलाकारी॥

✪ महापुरुष 'श्रीशिवानन्द' जय शोक-ताप-भयहारी।
जयतु 'तुरीयानन्द' त्यागिवर मोह तिमिर अपसारी॥३॥

✪ 'त्रिगुणातीतानन्द' स्वामि जय, प्रभु सन्देश प्रचारी।
जयतु 'अभेदानन्द' तपस्वी जय वेदान्त-प्रचारी॥

✪ जय 'सुबोध' शिशु जय 'गंगाधर' शिव सेवाव्रतधारी।
जय 'विज्ञानानन्द' ज्ञानघन, जय अज्ञान निवारी॥४॥

✪ 'गिरिश' 'राम' 'बलराम' सुरेन्द्र, महेन्द्र आदि सहकारी।
रामकृष्ण भक्तन सब जय जय, तुमको प्रणति हमारी॥

✪ रामकृष्ण के पावन मंगल चरण-स्पर्श अधिकारी।
जड़ चेतन सब वस्तु तथा स्थल जय हो सदा तुम्हारी॥५॥

पूर्व प्रेसिडेन्ट महाराज के साथ एक अपराह्न

– श्री हर्षदत्त, (कलकत्ता)

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के विगत अध्यक्ष पूजनीय श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज ने २४ जनवरी १९८९ को रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष का पद-भार ग्रहण किया। उसके एक महीने बाद बंगला के प्रसिद्ध पत्र 'देश' की ओर से श्री हर्ष दत्त के द्वारा उनका जो साक्षात्कार लिया गया था वह 'देश' के ०२-०५-१९८९ के अंक में प्रकाशित हुआ था। 'विवेक शिखा' के पाठकों के लिए उस महत्त्वपूर्ण साक्षात्कार का हिन्दी अनुवाद डॉ० केदारनाथ लाभ ने किया है। हम उसे यहाँ 'देश' के प्रति आभारपूर्वक प्रकाशित कर रहे हैं। - सं०)

उन्नीस सौ तेइस ईस्वी में बाइस वर्ष के एक शिक्षित युवक ने श्रीरामकृष्ण के भावादर्श से प्रेरित हो मंत्रदीक्षा ली। युवक के दीक्षागुरु थे-स्वामी सारदानन्दजी महाराज। सारदानन्दजी श्रीरामकृष्ण की अन्यतम त्यागी सन्तान थे। वे परमहंस देव के मात्र प्रत्यक्ष शिष्य ही नहीं, उनके कृपापात्र साधक और कर्मयोगी भी थे। सारदानन्दजी के अपने शब्दों में : "कल्पतरु होने के समय के अतिरिक्त भी ठाकुर ने अनेक बार अनेक लोगों की मनोकामना पूर्ण की थी। ऐसे ही एक दिन मुझे निकट खड़ा देखकर ठाकुर बोले, 'क्यों रे, तूने कुछ नहीं माँगा?' मैंने कहा, 'और क्या माँगू? इतना ही कर दीजिए कि जिससे मैं सर्वभूतों में ब्रह्मदर्शन कर सकूँ।' उत्तर में ठाकुर ने कहा, 'अरे, वह तो अन्तिम बात है रे।' मैंने कहा, 'सो मैं नहीं जानता महाराज !' तब ठाकुर बोले, 'ठीक है, तेरा होगा'।" इस घटना का वर्णन करने के बाद शरत्चन्द्र ने यह भी कहा "उन्होंने जो कुछ कहा था, उनकी कृपा से अब उसका भलीभाँति अनुभव कर रहा हूँ।" (श्रीरामकृष्ण-भक्तमालिका, प्रथम भाग; स्वामी गम्भीरानन्द, पृष्ठ, २८०) परवर्ती काल में सारदानन्दजी श्री श्रीमाँ सारदा देवी के 'प्रधान सेवक' थे। इसके साथ ही स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिष्ठित रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के वे आजीव प्रधान सचिव रहे।

लम्बे तीस वर्षों तक उन्होंने रामकृष्ण संघ के सचिव का 'गुरुभार असाधारण निष्ठा के साथ' वहन किया था। और उसके साथ-साथ "श्रीरामकृष्ण-स्वरूपिणी संघजननी श्रीमाँ के 'भार' वहन की" पराकाष्ठा सारदानन्दजी ने दिखायी थी। .....श्रीमाँ जब तक नश्वर शरीर में वर्तमान थीं, तब तक वे ही थे माँ के प्रधान सेवक। श्रीमाँ कहा करतीं : 'शरत है मेरा भारवाहक।' वे कहतीं : मेरा भार लेना क्या सहज है? शरत् के सिवा कोई और भार ले सकता है, ऐसा तो देखा नहीं। वह मेरा वासुकी है, सहस्रफण होकर कितने कार्य करता है, जहाँ पानी बरसता है वहीं छाता पकड़ लेता है।' (शतरूपे सारदा : स्वामी लोकेश्वरानन्द सम्पादित, पृष्ठ ६२)

श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ के ऐसे कृपापात्र जो साधक थे, उनसे तेइस वर्ष की उम्र में मन्त्रदीक्षा लेकर उस युवक ने अपना जीवन धन्य किया था। इस युवक का नाम था विजयचन्द्र राय। १९२८ ई० में श्रीरामकृष्ण की एक अन्य त्यागी सन्तान और श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन के द्वितीय अध्यक्ष स्वामी शिवानन्दजी महाराज से उन्होंने संन्यासव्रत ग्रहण किया। संन्यास-जीवन में विजयचन्द्र का नामकरण हुआ-स्वामी भूतेशानन्द।

प्रेसिडेन्ट महाराज एक साथ ही शास्त्रज्ञ, सुवक्ता, वाग्विदग्ध सुपण्डित और विभिन्न धर्मग्रन्थों के रचयिता हैं। उनके मधुर व्यक्तित्व, आन्तरिकता पूर्ण व्यवहार, और प्रत्येक व्यक्ति के प्रति उनके माँ के समान स्नेह और प्रेम का प्रत्यक्ष परिचय हमलोगों ने पाया है। वे अनेक व्यक्तियों के दीक्षा मंत्र के गुरु मात्र ही नहीं, उनके बिल्कुल अपने और परम आत्मीय भी हैं।

विगत ११ मार्च को भूतेशानन्दजी महाराज ने हमलोगों को कुछ देर के लिए अपनी संगति प्रदान की थी-बेलुड़ मठ के अपने निवास भवन में। हमलोग जब बेलुड़ मठ पहुँचे, उस समय अपराह्न की वेला थी। मठ का द्वार उस समय भी सामान्य लोगों के लिए नहीं खुला था। सारे मठ-प्रांगण में शान्तिपूर्ण एक अद्भुत निःशब्दता विराज रही थी। लगता था, जैसे यहाँ एक अनन्त काल की साधना मूर्तरूप धारण कर शुद्ध हो गयी है। प्रेसिडेन्ट महाराज शान्त चित्त से हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने हमारी जिज्ञासाओं के उत्तर दिये हैं अत्यंत प्रशान्त तन्मयतापूर्वक—अनुत्तेजित स्वर में

उदाहरणों के साथ, तथापि सहज सरल भाषा में।

अन्तरंग और अवाध साक्षात्कार के अन्त में इन चिरप्रणम्य, सर्वत्यागी, संन्यासी ने मंद हास्य के साथ कहा,'अब तक जो कुछ भी मैंने कहा वह सब ठाकुर की ही बात थी। मेरी नहीं। तुमलोग फिर आना।

यह वार्तालाप उसी 'बात' का लिखित रूप मात्र है।

देश : रामकृष्ण मठ मिशन तथाकथित धार्मिक संस्थानों की भांति लोगों को आकर्षित करने के लिए गंडा-तावीज, माला-भस्म-भभूत या कोई भी मंत्र-पूत अलौकिक वस्तु अथवा रोग-ताप के शमन के लिए जड़ी-बूटी, औषधि आदि कुछ भी नहीं देता। यहाँ तक कि उग्र गुरुवादी धारणाओं के दायरे से भी यह संघ अपने को दूर रखता है। तथापि, यह आश्चर्य का विषय है कि इन सब अभीष्ट उपकरणों को नहीं जानने पर भी, अनेकानेक व्यक्ति आज विभिन्न रूपों में इस संस्थान से जुड़ना चाहते हैं। श्रीरामकृष्ण–श्रीमाँ और विवेकानन्द की भावधारा के संसर्ग में स्वयं को ले आने के लिए लोगों की आकुलता बढ़ी है। ऐसा क्यों होता है? इसका सम्भावित कारण क्या है?

भूतेशानन्दजी : देखो, मनुष्य की यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि संसार में वह जिस तापयातना को भोग रहा है, उससे वह त्राण पाना चाहता है। इसी त्राण पाने के लिए जो सब अलौकिक उपाय हैं, उनमें जिनका विश्वास है, वे सम्भवतः उसी ओर झुक पड़ते हैं। किन्तु सभी मनुष्यों को ये अलौकिक उपादान अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाते हैं। जो अलौकिक चमत्कार के प्रति आकर्षित नहीं होते, वे तब लौकिक जीवन के बीच ही मुक्ति या त्राण की खोज करते हैं। श्रीरामकृष्ण-भावधारा की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसमें हमलोग ऐसी बातें और भाव, इस मुक्ति के उपाय के रूप में पाते हैं, जिन्हें मनुष्य समझ सकते हैं, स्वभावतः ही समझ पाते हैं। किसी भी अलौकिक वस्तु या विश्वास के ऊपर उसे निर्भर नहीं रहना होता। सामान्य मनुष्य इसी कारण से ठाकुर की भावधारा की ओर आकृष्ट होता है। यहाँ दुर्बोध्य, पहेलीनुमा कुछ भी नहीं है। सीधी, स्पष्ट, साफ-सुथरी बातें हैं। जैसे, ठाकुर कहते हैं, 'त्याग के बिना कुछ नहीं होगा' मनुष्य त्याग कर सके या न कर सके, किन्तु विषयवस्तु का तात्पर्य उसकी समझ के योग्य है। 'वासना का त्याग होने पर ही मनुष्य को शान्ति मिल सकती है।' यह भी आदमी समझ सकता है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं 'भगवान में भक्ति जितनी बढ़ेगी, मनुष्य उतना ही सांसारिक दुःख-कष्टों के ऊपर उठ सकेगा।' इसे भी मनुष्य आसानी से समझ लेता है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण सहज हैं। श्रीरामकृष्ण आसानी से समझने योग्य हैं। और उनके भाव भी सहज बोधगम्य हैं। वस्तुतः, इच्छित वस्तु पाने के लिए, लौकिक की अपेक्षा अलौकिक उपायों में हम घुस जाना चाहते हैं, किन्तु लौकिक उपायों के द्वारा ही उसे पाया जा सकता हो तो फिर अलौकिक की कोई आवश्यकता उसे नहीं रह जाती। श्रीरामकृष्ण ने जो कुछ कहा है उनमें कोई भी बात अलौकिक नहीं है। सब सहज स्वाभाविक है। इसके लिए अलौकिकता में विश्वास करने की जरूरत नहीं पड़ती। साधारण दृष्टि डालने पर ही मनुष्य उसे समझ सकता है।

देशः विज्ञान की विजययात्रा के इस युग में अलौकिक चमत्कारों के प्रति मनुष्य में ऐसी आस्था या विश्वास का रहना बड़े आश्चर्य का विषय नहीं है क्या?

भूतेशानन्दजी : हाँ ! देखो, अलौकिकता के प्रति मनुष्य का विशेष झुकाव होने का कारण यह है कि मनुष्य ऐसी वस्तु पाना चाहता है, जिसकी कीमत चुकाने को वह तैयार नहीं है। श्रीरामकृष्ण इस प्रकार की कोई भी वस्तु देने का वादा नहीं करते। वे ऐसी ही बात कहते हैं, जो लौकिक जीवन के आचरण द्वारा रूपायित होगी। काफी सीधी बातों के द्वारा वे सब कुछ कहते हैं। उनकी सारी बातों का जीवन में प्रयोग करना शायद दुष्कर हो, किन्तु उन्हें समझना काफी सहज है। यह प्रसन्नता की बात है कि विज्ञान की शिक्षा से मनुष्य की समझदारी धीरे-धीरे परिपक्व हो रही है। और विज्ञान की पद्धति से मनुष्य का मन जब शिक्षित होता है, तब स्पष्ट, प्रतीयमान (अनुभूत ज्ञान) भाव उसे विशेष आकृष्ट करते हैं। अलौकिक वस्तु के प्रति उसकी आस्था कम होने लगती है।

(प्रसंगवश इस सन्दर्भ में भूतेशानन्दजी का एक अभिभाषण स्मरणीय है। ८ मई १९८७ को श्रीरामकृष्ण मठ, तमलुक में दिये गये अपने अभिभाषण में उन्होंने कहा थाः ठाकुर तो दिखा गये हैं कि वे कुछ अतिमानवीय दैवी क्रिया कलाप करते नहीं। एक आदमी ठाकुर के पास आकर कहता है, सुना है, यहाँ परमहंसदेव औषधि देते हैं। ठाकुर सशंकित होकर कहते हैं, नहीं, यहाँ नहीं, वहाँ पंचवटी में। साधु से या भगवान से हमलोग इन वस्तुओं को ही चाहते हैं। मुँह से कहते हैं ज्ञान-भक्ति चाहते हैं-किन्तु वस्तुतः

यह सब कितना चाहते हैं? ऐसी स्थिति में ठाकुर हमलोगों के किस काम के हैं, यह बात विचारणीय हैं। हमलोग सामान्यतः जो चाहते हैं, ठाकुर के पास वह सब कुछ भी नहीं है। धन-दौलत नहीं है।, बीमारी ठीक नहीं कर पाते हैं या करते नहीं हैं, मुकदमा जितवा देने, बाल-बच्चों को परीक्षा में पास करा देने, नौकरी पाने, बेटी का विवाह आदि सांसारिक कार्यों के लिए आशीर्वाद मांगने पर वे कहा करते थे, 'माँ जानती हैं, मैं कुछ नहीं जानता।' ऐसे जो ठाकुर हैं,उनका अनुसरण कर हम क्या करेंगे? इसी से आदमी जब देखता है कि उनके पास आने पर कोई सांसारिक लाभ होता नहीं, तब कहता है, 'धत् इतनी आशा लेकर यहाँ आया, किन्तु कोई फायदा नहीं हुआ।' कोई-कोई कहता है, ''दीक्षा लेने के बाद से मेरे परिवार में आशा के प्रतिकूल घटनाएँ घटने लगी हैं, यह क्या दीक्षा के दोष से हो रही है?'' इसके उत्तर में कहूँगा : ठाकुर ने कहा है, भगवान के लिए भी भगवान को चाहूँगा। उनको उद्देश्य के रूप में चाहूँगा, उपाय के रूप में नहीं। वे यह देंगे, वह देंगे-इन सब बातों की आशा कर उन्हें नहीं चाहूँगा। किन्तु ऐसी मानसिकता लेकर ठाकुर के पास कितने लोग या हमलोग जाते हैं? हमलोग जो चाहते हैं वह उनके पास पाते नहीं। फिर क्या करें? एक ओर मुँह से 'ठाकुर-ठाकुर' कहते हैं और दूसरी ओर दैवी चमत्कारी क्षमता से सम्पन्न व्यक्तियों के शरणापन्न होते हैं। मैं उनलोगों को दोष नहीं देता, केवल मनुष्यों की कामना-लालसा की बात कहता हूँ।

''एक बार एक जगह गया था। एक आदमी ने मुझसे पूछा, 'आप हाथ देखना जानते हैं?' मैंने कहा, 'नहीं।' 'जन्म कुंडली देखना जानते हैं?' 'नहीं।' 'दवा-दारू देना जानते है?' 'नहीं।' तो फिर आप जानते क्या हैं?' सोचा, सचमुच ही तो मैं जानता क्या हूँ? ऐसे लोगों की आशा-आकांक्षा पूरी करने योग्य वस्तुएँ तो मेरे पास कुछ भी नहीं हैं। तथापि श्रीरामकृष्ण इन लोगों को प्रिय लगते हैं। क्यों लगते हैं? एक कारण से लगते हैं। और वह है, ऐसे सरल आत्मभोला, सब के दुःख से दुःखी मनुष्य कितने मिलते हैं? जो सर्वदा ही त्याग-वैराग्य की बात कहते हैं, ईश्वर के अतिरिक्त जो और कुछ नहीं जानते, तथापि किसी की सन्तान की मृत्यु हो जाने पर उनके पास जाकर अपनी व्यथा-कथा कहने से, उनकी आँखें आँसुओं से गीली हो जाती हैं, इन्हीं ठाकुर को तो हमलोग चाहते हैं। जो हमलोगों के दुःख से दुःखी होते हैं, उदासीन होकर नहीं रहते, उनको ही तो हमलोग चाहते हैं। वे समस्त दुःख विपदाओं से हमलोगों का एक बारगी उद्धार न भी कर पायें, किन्तु उनमें हमलोग एक ऐसे सहानुभूतिशील को पाते हैं जो हमलोगों के दुःख को समझते हैं।' {उद्बोधन, चैत्र १३९५, ११ वर्ष, संख्या-३ पृ० १२५-२६}

देश : स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव से सत्ययुग का आगमन हुआ है। सत्ययुग कहने से स्वामीजी का क्या तात्पर्य है ! किन लक्षणों के आधार पर इस युग को सत्ययुग के रूप में रेखांकित करेंगे?

भूतेशानन्दजी : सत्ययुग-यह शब्द सबके मन को आकृष्ट करता है, आलोड़ित करता है। साथ ही हमलोगों के मन में एक संशय भी दिखाई पड़ता है। यह सोचकर कि श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव से सत्युग का आरम्भ हुआ है। माना कि सत्ययुग आया है। किन्तु उसका प्रकाश कहाँ दिखाई पड़ता है? बात यह है कि सत्ययुग कहने से हमलोग एक ऐसे काल्पनिक युग की अवधारणा करते हैं जिस युग में कोई दोष नहीं, सब गुण ही होता है। ऐसा कोई युग कभी भी नहीं था। यह संसार सदा ही गुण-दोष का, अच्छे-बुरे का मिश्रित रूप रहा है। तो फिर स्वामीजी ने 'सत्ययुग' शब्द क्यों कहा? इसके उत्तर में कहूँगा कि मनुष्य जिस क्षण संसार की अच्छाई की ओर आकृष्ट होता है, बुराई से दूर रहना चाहता है, उस क्षण अर्थात् उस समय उसकी जो मन की अवस्था होती है, उसे ही हमलोग सत्ययुग कहते है। उस युग का आविर्भाव व्यापक रूप से अथवा हठात् नहीं होता। धीरे-धीरे युग का परिवर्तन होता है। यह लोकदृष्टि से ओझल होता है। उस परिवर्तन का समय जब शुरू होता है, परिवर्तन का तात्पर्य है अच्छाई की ओर परिवर्तन, तब उसे ही सत्ययुग कहते हैं। इस सत्ययुग को परिपुष्ट होने में लम्बा समय लगता हैं। अभी उसका फल क्या-क्या हुआ है, उसका स्वरूप कैसा है, यह समझ में नहीं आएगा। वह दिखाई नहीं पड़ेगा। तथापि विचार कर देखने पर हम देख सकेंगे कि श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव के बाद से मनुष्य के भीतर की तन्द्रा टूटी है। एक नया पथ, जिसे हमलोग कल्याण का पथ कहते हैं, उस ओर चलने की प्रवृत्ति जगी है। और ध्रुवतारा की भाँति श्रीरामकृष्ण अपनी साधना और स्नेह के आलोक से हमलोगों को राह दिखाते ले चल रहे हैं। इसे हमलोग भली-भाँति समझ पा रहे हैं। ऐसे समय को ही स्वामीजी ने सत्ययुग कहा है। उन्होंने इसी कल्याणोन्मुखी आरोहण की ओर संकेत किया है।

देश : शिव भाव से जीव-सेवा के सम्बन्ध में विवेकानन्द का जो आदर्श है, उस आदर्श को क्रियान्वित करने के लक्ष्य से मठ-मिशन क्या धीरे-धीरे दूर होता जा रहा है? यदि दूर नहीं हो

रहा है तो फिर अन्य पाँच संस्थाओं से श्रीरामकृष्ण संघ की भिन्नता कहाँ है? उसकी स्वतंत्रता और विशिष्टता को हमलोग किस रूप में पहचान सकेंगे?

भूतेशानन्दजी : सेवा के आदर्श को जब हमलोग किसी एक उद्देश्य को सिद्धि के लिए हथियार के रूप में ग्रहण करते हैं, तब उसके भीतर एक कपटता रहती है। उस समय हमलोग किसी अभिप्रेत स्वार्थ को सिद्ध करने के उपाय के रूप में सेवा को ग्रहण करते है। किन्तु जिस सेवा का आदर्श श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द ने हमलोगों को दिया है, उसका प्रकृत रूप है मानव-प्रेम। मनुष्य रूपी जो ईश्वर है, उसके प्रति निःस्वार्थ प्रेम। श्रीरामकृष्ण संघ का जो त्याग है, उसकी मूल प्रेरणा यही प्रेम है। जो 'जीव को प्रेम करते हैं, वही ईश्वर की सेवा करते हैं।' हमलोग इस भाव को जीवन में कितना उतार सके हैं, यही सबसे बड़ी बात है। श्रीरामकृष्ण संघ शुरू से इस आदर्श को साकार करने की चेष्टा कर रहा है। कभी इससे दूर नहीं हुआ है। उसकी चेष्टा अबाध रही है।

अनेक संस्थाएँ सम्भवतः अपने कार्यों में सेवाधर्म को आदर्श के रूप में ग्रहण नहीं करतीं। संभवतः कोई संस्था नाम-यश की आकांक्षा से कार्य करती है या संभवतः मनुष्यों के प्रति उन संस्थाओं की स्वभाव सुलभ शुभाकांक्षा है। इसके द्वारा प्रेरित हो कार्य करती हैं। स्वामीजी जिसे सेवा धर्म कहते हैं, ठीक उसी भाव से सम्भवतः अनेक जगहों पर कार्य नहीं होते। सेवा के भीतर से मानव-प्रेम यह भाव अनेक लोगों को आकृष्ट करता है। इससे जीवन में कल्याण के पथ पर चलने में अधिक सहायता मिलेगी।

देश : महाराज, आपने अनेक पश्चिमी देशों का परिभ्रमण किया है। वहाँ के लोगों के मन में रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा ने कैसा प्रभाव डाला है? इस भावधारा के प्रति उन लोगों में कितना झुकाव है और आपको यह कैसा लगा है !

भूतेशानन्दजी : पश्चिमी दशों का भ्रमण किया है, किन्तु मेरा घूमना बहुत सीमित रहा है। जैसे, अमेरिकनों के सम्बन्ध में कहावत है कि पन्द्रह दिन भारत का भ्रमण कर एक वृहदाकार पुस्तक लिख डालता है। मेरी वैसी यात्रा नहीं हुई। ठाकुर के कार्य से विदेश गया हूँ। वहाँ के भक्तों से सम्पर्क हुआ। और उन लोगों के पार्श्ववर्ती सामान्य लोगों को देखा। सामान्य लोगों की अपेक्षा भक्तों की संख्या बहुत अधिक है, ऐसी बात नहीं है। कुल मिलाकर सम्भवतः वे मुट्ठी भर होंगे। ये ही कुछ सामान्य लोग ठाकुर के भाव को सही रूप में ग्रहण करने की चेष्टा कर रहे हैं तथा इन्हीं भावों के द्वारा शान्ति प्राप्त करते हैं। बाहर के देशों में देखा है कि वहाँ के लोग खूब धनी एवं सम्पन्न हैं। उन लोगों के जीवन में सुख-सुविधा के उपकरणों की निस्सन्देह प्रचुरता है। किन्तु इन उपकरणों से उनके प्राणों की पिपासा नहीं मिटती। वे अपने जीवन को और अधिक सार्थक करना चाहते हैं। किन्तु किस प्रकार सार्थक करना होगा, इसे वे समझ नहीं पाते। लगता है, कम से कम उन देशों में जाने पर प्रतीत होता है कि ठाकुर—माँ—स्वामीजी के भाव उन लोगों की, उस दिशा में थोड़ी-सी हृदय की भूख मिटा पाते हैं। उस शान्ति का रहस्य वे जान पाते हैं।

देश : हमारे देश में इन दिनों जो समस्या प्रबल रूप से मस्तिष्क को आन्दोलित कर रही है, वह है धार्मिक रूढ़िवादिता या कट्टरपंथता। विभिन्न धर्मों के कट्टरपंथी लोग किसी एक आवेगप्रवण विषय को लेकर देश के साधारण धर्मप्राण, धर्मभीरु लोगों को पागल कर दे रहे हैं। जिसकी अनिवार्य परिणति हो रही है—मारकाट, रक्तपात और मृत्यु। रूढ़िवादियों की दृष्टिभंगी और मानसिकता देश के सर्वांगीण कल्याण के क्षेत्र में अत्यन्त हानिकारक है। तथापि हमलोगों के इस महान देश में समस्त युगों के सर्वश्रेष्ठ समन्वयाचार्य श्रीरामकृष्ण ने जन्म ग्रहण किया था। उनका सम्पूर्ण जीवन और सन्देश समस्त धर्मों की मिलन-माला है। अक्सर हमलोगों को ऐसा लगता है कि धार्मिक कट्टरपंथीगण जब आपस में संघर्ष में लिप्त हों, तब रामकृष्ण मठ-मिशन यदि स्वतः प्रेरित हो उन लोगों के बीच श्रीरामकृष्ण का संदेश लेकर उपस्थित हों तो धर्म सम्बन्धी अनेक समस्याओं का सरल समाधान हो सकता है। इस सम्बन्ध में आपका क्या विचार है?

भूतेशानन्दजी : मनुष्य के अन्दर सदा ही एक संकीर्णता का मनोभाव कार्य करता रहता है। और इसी संकीर्णता के फलस्वरूप मनुष्य में धर्मान्धता आती है। श्रीरामकृष्ण ने इस संसार में प्रचलित विभिन्न धार्मिक मतों का सारतत्व उपलब्ध कर कहा है, चिन्तन-मनन कर कहा है कि इस धर्मान्धता के मूल में है मनुष्य की अज्ञानता। मनुष्य केवल अपने धर्म-मत में ही विश्वास करता है। इसी विश्वास को स्वामीजी ने अन्धविश्वास कहा था। और श्रीरामकृष्ण ने इसे हठधर्म कहा है। वचनामृत में उन्होंने कहा है "यदि आन्तरिकता हो तो सभी धर्मों से ईश्वर मिल सकते हैं। वैष्णवों को भी मिलेंगे तथा शाक्तों, वेदान्तियों और ब्राह्मों को भी, मुसलमानों और ईसाइयों को भी। हृदय से चाहने पर सब को

मिलेंगे। कोई-कोई झगड़ा कर बैठते हैं। वे कहते हैं कि हमारे श्रीकृष्ण को भजे बिना कुछ न बनेगा; या हमारी कालीमाता को भजे बिना कुछ न होगा; अथवा हमारे ईसाई धर्म को ग्रहण किये बिना कुछ न होगा।

"ऐसी बुद्धि का नाम हठधर्म है, अर्थात् मेरा ही धर्म ठीक है और बाकी सब का गलत। यह बुद्धि खराब है। ईश्वर के पास हम बहुत रास्तों से पहुँच सकते हैं।"

वस्तुतः मनुष्य के अन्धविश्वास के पीछे कोई भी तर्क नहीं होता है। जैसे कहा जाता है कि सभी मनुष्य पापी हैं। और उस पाप से मुक्ति पाने के लिए किसी व्यक्ति विशेष की शरण में जाने के अलावा उनके लिए कोई भी उपाय नहीं है। यह सिद्धान्त मनुष्य की अत्यन्त सामान्य उक्ति के द्वारा एक मार्ग दिखा देना चाहता है। किन्तु जब वह दूसरे देश के साथ, दूसरी जाति के साथ, दूसरे धर्मावलम्बियों के साथ विचार करता है तब वह समझ पाता है कि इस बात का कोई भी मूल्य नहीं है। इसीसे जिसे धर्मान्धता कहता हूँ उसकी उत्पत्ति अज्ञानता से होती है। श्रीरामकृष्ण ने अपनी साधना और उपदेशों के द्वारा इस अज्ञानता को दूर करने की काफी चेष्टा की है। उन्होंने स्वयं विभिन्न धर्मों की प्रणालियों की उपलब्धि की थी। प्रत्येक धार्मिक सिद्धांत के द्वारा उसी परम सत्य को उपलब्ध किया जाता है - इसे उन्होंने स्वयं देखा था। किसी धर्म के प्रति उन्हें अश्रद्धा नहीं थी। सर्वत्र फैले हुए सत्य को एवं उसके विभिन्न रूपों को उन्होंने देखा तथा उसे स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। इसके परिणाम स्वरूप मनुष्य के अपने-अपने मन में जो संकीर्णता है उसे दूर करने का मार्ग उसने पाया है। हमलोगों ने पाया है। श्रीरामकृष्ण के इस सर्वधर्मसमन्वय के उपदेश को जहाँ भी फैलाएँगे, वहीं मनुष्य का कल्याण होगा। किन्तु वह कल्याण एक व्यक्ति के द्वारा या किसी एक विशेष सम्प्रदाय के द्वारा नहीं होगा। जब मनुष्य स्वाभाविक रूप से इस बात को अर्थात् श्रीरामकृष्ण के सन्देश की सत्यता को समझेगा, तभी उसका कल्याण होगा। इसे वे सब कभी समझेंगे कि नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। क्योंकि कट्टरपंथी लोग सभी स्थानों में, सभी देशों में, सभी काल में रहते हैं। फिर इसके साथ ही इस अज्ञानता के विरुद्ध मनुष्य का संग्राम, ज्ञान-प्राप्ति के लिए बुराई के साथ अच्छाई का संग्राम-यह भी सभी स्थानों में होता रहता है और होता रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति, जो अच्छाई चाहता है, वह बुराई से मुक्त होना चाहता है। फिर, मेरे लिए जो कल्याणकारी है, वह दूसरे के लिए भी कल्याणकारी है-यह बात स्वाभाविक रूप से ही उसके मन में प्रकट होती है। इसके लिए वह सतत प्रयास करेगा। अपने को लेकर ही सन्तुष्ट रहना मनुष्य के लिए उचित नहीं है। क्योंकि उसका एक समष्टि जीवन है। समष्टि जीवन का तात्पर्य किसी एक देश का नहीं। देशनिरपेक्ष समस्त मानव का समष्टि—जीवन। अपनी स्वार्थबुद्धि का परित्याग कर, सबके कल्याण में मेरा कल्याण है—इस बात को मनुष्य जितना ही समझ सकेगा, उतना ही वह इस सत्य को सबके सामने, अपने स्वयं के जीवन के द्वारा प्रतिष्ठित कर सकेगा एवं करना चाहेगा। तथापि, कट्टरवादिता की बात होती है, धर्मान्धता के विरुद्ध हमलोगों को स्वयं अपने को प्रबुद्ध करने की, समझाने की जरूरत है, निःसन्देह होने की जरूरत है। ऐसा नहीं होने पर क्या लाभ ? जिस वस्तु के सम्बन्ध में मैं स्वयं पूर्णरूपेण निःसन्देह नहीं हूँ, उस पर मेरा अधिक बल नहीं रहता। मेरे कहने पर भी उस बात का अधिक मोल नहीं होता। इसलिए, सबके पास पहुँचा देना इसकी जैसी आवश्यकता है उससे अधिक आवश्यक है उसे अपने निजी जीवन में रूपायित करना। धर्मान्धता को इसी प्रकार दूर करना होगा।

देश : स्वामी विवेकानन्द के महाप्रयाण के पश्चात् श्रीमाँ सारदा देवी ने संघजननी के रूप में जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण संघ का अपनी आध्यात्मिक आभा, जीवनादर्श और मातृ स्नेह से लालन-पालन किया है, वह आश्चर्यजनक है। रामकृष्ण मठ—मिशन की इस विश्वव्यापी धर्मचेतना का उन्मेष करना और सर्वाश्रयी कर्मधारा के पीछे श्रीमाँ की साधना और अवदान अपरिमेय है। कई लोगों का कहना है कि इस अवदान की तुलना में माँ के जीवन और सन्देश को जनसाधारण के निकट उस सघन रूप में नहीं पहुँचाया जा सका है। जो कुछ पहुँचाया गया है, वह है श्रीरामकृष्ण का सन्देश। यहाँ तक कि रामकृष्ण मठ के बहुत बाद श्रीमाँ के नाम से सारदा मठ स्थापित हुआ। किन्तु १८१४ ई० में अपने गुरुभ्राता स्वामी शिवानन्दजी को लिखित एक पत्र में स्वामीजी ने कहा था, "माँ का मठ पहले बनाना चाहिए। .....मेरे लिए माँ की कृपा पिता की कृपा से लाखों बार अधिक मूल्यवान है।" इस सम्बन्ध में, यदि आप कुछ आलोक प्रदान करें।

भूतेशानन्द जी : बात यह है कि कोई आदर्श तभी फैलता है जब उस आदर्श को ग्रहण करने की योग्यता उस समाज में होती है। स्वामीजी की इच्छा थी कि पहले माताओं के लिए मठ बनाएँगे। किन्तु उस समय उन्होंने उसके अनुकूल क्षेत्र नहीं पाया। जिसके द्वारा करेंगे उसका साधन नहीं पाया। इतने दिनों बाद

स्वामी जी की शुभ इच्छा फलवती हुई है। इच्छा तो हमलोगों को हमेशा ही रहती है। किन्तु उसे रूपायित होने में समय लगता है। उपयुक्त समय। विवेकानन्द की दृष्टि में भारतीय नारी का अन्तिम आदर्श थीं माँ। निवेदिता के विचार से भी "श्री श्री माँ नारीत्व के आदर्श के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की अन्तिम वाणी थीं।" स्वामीजी ने कहा था. "क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सबसे अधिक बलहीन और पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि यहाँ शक्ति का निरादर होता है। उस अनुपम शक्ति को भारत में पुनः जाग्रत करने के लिए माँ का जन्म हुआ है, और उन्हें केन्द्र बनाकर फिर से गार्गी और मैत्रेयी का जन्म संसार में होगा।" उन श्रीमाँ को समझने में लोगों को लम्बा समय लगा। अभी भी लगता है। शिवानन्दजी को ही तो स्वामीजी ने यह भी कहा था, "माँ के जीवन का विलक्षण महत्व तुमलोग अभी नहीं समझ सके हो—तुम में से एक भी नहीं, परन्तु धीरे-धीरे तुम जानोगे।" इसलिए, सर्वदा इच्छा रहने से ही उनका कार्य सिद्ध हो जाय, ऐसा नहीं होता है। यह समय सापेक्ष है।

देश : हिमालय की गोद में स्थित मायावती में मठ-मिशन का एक केन्द्र है, जो 'अद्वैत आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध है। इस केन्द्र में श्रीरामकृष्ण का चित्रपट-प्रतिमा-मूर्त्ति-मन्दिर कुछ भी नहीं है। स्वामीजी की भावना और इच्छा के अनुसार यहाँ विशुद्ध निराकार अद्वैततत्व का साधन, अनुशीलन और विवेचन होता है। मठ मिशन के दूसरे केन्द्रों में आचरित धर्मानुष्ठान से मायावती की पृथकता बिल्कुल स्पष्ट है। प्रश्न यह है कि मठ-मिशन के दूसरे केन्द्रों में मूर्त्ति-मन्दिर-रहित अध्यात्म साधना को यह पद्धति क्यों नहीं है? इस विषय में यदि कुछ कहें.....।

भूतेशानन्दजी : स्वामीजी ने अद्वैत को सदैव साधना के क्षेत्र में उपयोगी नहीं कहा है। तथापि, इसे एक आदर्श पथ के रूप में बताया है। अद्वैत एक आदर्श है। इस आदर्श पर पहुँचने के लिए धीरे-धीरे अपने को तैयार करना पड़ता है। अद्वैत आश्रम की स्थापना करने के पीछे स्वामीजी का यह उद्देश्य नहीं था कि यहाँ सभी अद्वैत की साधना करेंगे। ऐसा करने के लिए स्वामीजी ने कहा भी नहीं। स्वामीजी ने कहा है कि जो लोग अद्वैतवाद की साधना करना चाहते हैं उनके लिए यहाँ एक अनुकूल क्षेत्र होगा। यहाँ प्रतिकूलता नहीं रहेगी। इसीसे वहाँ उन्होंने मूर्त्तिपूजा आदि का निषेध किया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अद्वैत आश्रम में जो लोग रहते हैं, वे सब निराकारवादी हैं। ऐसा नहीं है। तथापि यदि कोई निराकारवादी हों तो वहाँ कोई उनकी प्रतिकूलता नहीं करेगा। इसीसे उस मठ का, मायावती के मठ का, उन्होंने इस रूप में गठन किया था जिससे वहाँ किसी अद्वैतवादी की साधना की प्रतिकूलता न हो। स्वामीजी ने कभी कहा है कि सही-सही अद्वैतवाद की साधना करना सामान्य लोगों के लिए सम्भव नहीं है। फिर भी सामान्यतः यदि कोई करना चाहे, तो उसके अनुकूल जगह की जरूरत है। वहाँ उसका प्रतिरोध कोई नहीं करेगा। मायावती का आश्रम इसी प्रकार का एक आश्रम है।

देश : मठ-मिशन के वार्षिक प्रतिवेदनों और समाचारपत्रों से एक बात धीरे-धीरे समझ में आ रही है कि विगत कई वर्षों से जिस अनुपात में मठ-केन्द्र स्थापित हुए हैं, उसकी तुलना में मिशन केन्द्र की स्थापना की संख्या बिल्कुल नगण्य है। ऐसा क्यों होता है? मिशन-केन्द्र के बिना रामकृष्ण—विवेकानन्द भावादर्श कैसे स्थापित हो सकेगा?

भूतेशानन्दजी : देखो, मठ-मिशन के सम्बन्ध में सामान्य लोगों में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ हैं। मठ-केन्द्र और मिशन-केन्द्र में कोई मूल अन्तर नहीं है। मूल अन्तर नहीं है, क्योंकि ठाकुर-माँ-स्वामीजी के जो आदर्श हैं, उन आदर्शों को अपने जीवन में उतारने के लिए ही ये दोनों केन्द्र हैं। मठ या मिशन के माध्यम से उन्हीं आदर्शों का प्रचार या प्रसार किया जाता है।

मुख्य रूप से देखने पर मठ-मिशन की यह विशेषता है कि मठ वह स्थान है जहाँ पर रहने वालों ने ठाकुर को जीवन के समस्त रूपों में ग्रहण किया है। ईश्वरीय साधन-भजन और धर्माचरण मठ केन्द्र के अनुरूप हैं। दूसरी ओर धार्मिक अनुशासन को नहीं मानकर भी जो लोग लोकोपकारी कार्य करना चाहते हैं, उन लोगों के लिए मिशन—केन्द्र अनुकूल क्षेत्र है। इसमें सबको लिया जाता है। मठ के सम्पूर्ण संचालन का भार संन्यासी—साधुओं पर है या रहता है। मिशन-केन्द्र वैसा नहीं है। जो लोग संन्यासी नहीं हैं, जो हिन्दूधर्म में विश्वास नहीं करते-ऐसे सभी लोगों के लिए यह एक क्षेत्र है। मिशन का क्षेत्र इस दृष्टि से व्यापक है। तो फिर मठ की सार्थकता कहाँ है? जो लोग श्रीरामकृष्ण की भावधारा में अपना जीवन—गठन करना चाहते हैं उनलोगों के लिए मठ की सार्थकता है। दूसरी ओर मिशन की सार्थकता यह है कि यदि कोई श्रीरामकृष्ण को छोड़ भी दे, तो भी वह मिशन का सदस्य हो सकता है, उसके क्रियाकलापों से जुड़ सकता है।

स्थापित, मिशन-केन्द्र की स्थापना कम नहीं हो रही है। वस्तुतः जहाँ के लोग जिस भाव से भावित होते हैं, वहाँ उनके प्रयास से ही संघ स्थापित होता है—चाहे वह मठ ही हो अथवा मिशन। इन दोनों में केवल विधान की दृष्टि से ही अन्तर है। नैतिक अन्तर रंचमात्र नहीं है।

देश : मठ या मिशन—इन दोनों केन्द्र का लक्ष्य तो फिर एक ही है: सेवा।

भूतेशानन्द जी : बात सटीक नहीं हुई। सेवा को ही एकमात्र लक्ष्य नहीं कहूँगा। ..... सेवा है, जीवन को एक विशेष आदर्श से अनुप्राणित है। सेवा हुई एक उपाय। यही एकमात्र ध्येय नहीं है। अक्सर हमलोगों को लगता है कि मठ का कार्य व्यापक होता है, मिशन का कार्य वैसा नहीं होता। यह भ्रान्त धारणा है। जहाँ मठ है, वहाँ लोग लोकोपकारी कार्य करते हैं। फिर जहाँ केवल लोकोपकारी कार्यों के लिए मिशन-केन्द्र की स्थापना हुई है, वहाँ धर्म को जीवन से अलग कर नहीं देखा जाता। इसीसे मठ-मिशन में उस दृष्टि से कोई भी अन्तर नहीं है।

देश : रामकृष्ण मठ-मिशन के कर्मप्रवाह के मुख्य वाहक एवं संचालक उसके सर्वत्यागी संन्यासीवृन्द हैं। वे संघ के स्तम्भस्वरूप हैं। अक्सर हम लोग सुनते हैं कि मठ-मिशन के अति व्यापक कार्य-कलापों की तुलना में संन्यासियों की संख्या बहुत कम है। इस कमी का कारण क्या है? तर्कवादी और वैज्ञानिक मानसिकतावाले युवकगण क्या त्याग के पथ पर आने को अब उत्साहित नहीं हो रहे हैं? अथवा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द का भावादर्श उन लोगों की चेतना को अब आलोड़ित नहीं कर पा रहा है?

भूतेशानन्दजी : यह जो कहते हो लोगों की कमी, उसका कारण है, सर्वत्याग किये बिना रामकृष्ण संघ में आकर कोई संन्यास नहीं ले सकता। लोगों की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा हमलोग आदर्श से भ्रष्ट न हो इस ओर हम अधिक ध्यान देते हैं। इसी से हमलोगों के द्वारा किसी को वरण करना या रिक्रूटमेन्ट बहुत सीमित है। फलतः हमलोगों की संख्या अधिक बढ़ती नहीं। तथापि बिल्कुल नहीं बढ़ती है, ऐसा नहीं है। कम होने पर भी प्रति वर्ष संन्यासियों की संख्या बढ़ रही है। फिर भी हम लोगों के बढ़ते हुए कार्यों की तुलना में वह नगण्य है। इधर हमारे कार्यों के ऊपर लोगों की आस्था बढ़ रही है। फिर जिस साधन से सेवा करेंगे, उसके लिए धन भी बढ़ रहा है। इसके फलस्वरूप, जो कार्य पहले एक आदमी कर सकता था, उसी कार्य के अभी कई गुना बढ़ जाने से दस आदमियों को मिलकर करना पड़ता है। यह बात स्वीकार करने योग्य नहीं है कि माँग की तुलना में हमलोगों के संन्यासियों की संख्या कम है। अभाव तो सर्वदा ही रहता है और सदैव रहेगा। तथापि निश्चय ही मठ-मिशन में योगदान करने को युवकगण उत्साहित हो रहे हैं। यदि हमलोग गणना करें तो देखेंगे कि हमलोगों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती रही है। किन्तु उस बढ़ने की गति, वृद्धि इतनी जल्दी नहीं होती जिसे लक्ष्य किया जा सके अथवा कार्य की तुलना में पर्याप्त हो।

देश : भारत का अन्यतम सबसे बड़ा अनाथ आश्रम अर्थात् रहड़ा में स्थित रामकृष्ण मिशन बालकाश्रम के संचालन का श्रेय इसी संघ को है। यहाँ श्रीरामकृष्ण वस्तुतः 'अनाथों के नाथ' हैं। इतना बड़ा एक कार्य प्रायः बिना हो-हल्ला के चल रहा है। प्रश्न यह है कि इस कार्य में देश के लोग आपको सहायता देते हैं क्या? वे लोग किस प्रकार देते हैं?

भूतेशानन्दजी : रहड़ा आश्रम सबसे बड़ा है या नहीं, मैं नहीं जानता। तथापि देश के लोगों के उदारतापूर्ण सहायता देने के कारण ही इतने अनाथों ने वहाँ आश्रय पाया है और उनका प्रतिपालन हो रहा है। लोगों की सहानुभूति के बिना यह कार्य नहीं हो सकता। निश्चय ही, इसीसे विस्तार की तुलना में यह सहायता सम्भवतः यथेष्ट नहीं है। इन सात सौ अनाथों की सेवा करने से ही क्या देश का दुःख मिटेगा ! नहीं मिटेगा। इसीसे जो अभाव है उसकी तुलना में हमलोग बहुत कम ही कर पाते हैं। फिर इस कार्य में लोगों की सहानुभूति नहीं है, यह नहीं कहूँगा। प्रचुर सहानुभूति है। जो जिस प्रकार कर सकते हैं, उसी प्रकार की सहायता करते हैं। पहले हमलोग जहाँ संभवतः पाँच या सात लड़कों का लालन-पालन करते थे, वहाँ आज सात सौ लड़कों का पालन कर पा रहे हैं। अतएव, यह लोगों की सहानुभूति के कारण होता है। अन्य कोई कारण नहीं हैं। तथापि यह सहानुभूति, सारे भारत में फैले हुए हजारों अनाथों के दुःख दूर करने की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। कभी हम यह नहीं सोचते कि हमलोग दुःख दर्द दूर कर पाये हैं, या कभी पूर्णतया कर सकेंगे.ऐसा भी भरोसा नहीं करते। किन्तु, इस भाव को लोग ग्रहण करें, यह वस्तु सब में एक भाव का सृजन करे, आलोड़न उत्पन्न करे। इस विषय में सक्रिय सहयोग देने के

लिए सभी जागरूक हों। रहड़ा आश्रम एक मॉडल इन्स्टीट्यूशन (आदर्श संस्था) है। इसे देखकर और भी बहुत सारे लोग कार्य आरम्भ करेंगे.इसी की हमलोगों को आशा है। ऐसा आश्रम और भी उठ खड़ा हो।

देश : आप जानते है, फिर भी सविनय अवगत करा रहा हूँ, 'देश' पत्रिका अपने निजी वैशिष्ट्य से आज बंगला साहित्य और संस्कृति का अविच्छेद्य अंग हो गयी है। इस पत्रिका के प्रकाशन का उम्र छप्पन वर्ष है। 'देश' पत्रिका की तुलना में स्वामी विवेकानन्द द्वारा संस्थापित 'उद्बोधन' पत्रिका उम्र में बड़ी है। इस वर्ष इस पत्रिका ने गौरवोज्वल ९१ वें वर्ष में पदार्पण किया है। परन्तु यह दुःख की बात है कि अनवरत रूप से इतने दिनों तक प्रकाशित होते रहने का गौरव प्राप्त करने के बावजूद 'उद्बोधन' का वैसा व्यापक प्रचार-प्रसार नहीं हुआ। स्वामीजी 'उद्बोधन' को घर–घर पहुँचा देना चाहते थे, सम्भव होने पर बिना मूल्य के भी। कई लोग कहते हैं कि रामकृष्ण मठ–मिशन आज तक 'उद्बोधन' को स्वामीजी की कल्पना के अनुसार बंगालियों के आध्यात्मिक जीवन का अविच्छेद्य अंग नहीं बना सके। ऐसा क्यों हुआ ! कोई विशेष बाधा या उद्यम की कमी के कारण ऐसा हुआ? इस सम्बन्ध में आपका मतामत।

भूतेशानन्दजी : मुख्य बात यह है कि 'उद्बोधन' में जो सामग्री दी जाती है, वह खाँटी सत्य रहती है। उसमें रस की चासनी भरकर उसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास नहीं किया जाता। 'उद्बोधन' के माध्यम से, इसके द्वारा एक आदर्श का प्रचार करने का प्रयास किया जाता है। उस आदर्श को सही-सही समझने में लोगों को समय लगेगा। कोई भी वस्तु तभी लोकप्रिय या पॉपुलर होती है, जब वह जनसाधारण की रुचि के अनुरूप होती है। हम लोग 'उद्बोधन' को उस प्रकार दूसरों की रुचि के अनुकूल बनाकर गढ़ने की चेष्टा नहीं करते। स्वामीजी ने भी नहीं की। 'उद्बोधन' एक आदर्श का केवल वाहक है। वह इतने वर्षों से उसी आदर्श का वहन करता हुआ चल रहा है। उस आदर्श में तेज है, प्राण है। तथापि इस आदर्श को पत्रिका के माध्यम से अनेकानेक लोगों के निकट पहुँचा देने के लिए जिस शक्ति–सामर्थ्य की आवश्यकता है, स्वयं हमलोगों में उस शक्ति–सामर्थ्य का अभाव है। यह बात स्वीकार करूँगा। फिर भी 'उद्बोधन' के लोकप्रिय नहीं होने का कारण है विभिन्न रसों को परोसकर इसे लोगों की रुचि के अनुरूप नहीं बनाया जा सका है।

देश : ठीक है। पोपुलैरिटी या जनप्रियता को छोड़ देने पर भी, इतने वर्षों से जो पत्रिका प्रकाशित होती आ रही है, वह पत्रिका हमलोगों के प्रयोजनार्थ धर्मजीवन का अंग क्यों नहीं हो सकी ? रामकृष्ण भावादर्श की प्रमुख पत्रिका होने के कारण यह एक विराट् भूमिका निभा सकती थी। है कि नहीं !

भूतेशानन्दजी : देखो, हमलोग यदि 'उद्बोधन' नहीं कहकर ठाकुर के भावप्रचार का यन्त्र कहें, तो देखेंगे कि हमलोगों के रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का प्रवाह क्रमशः बढ़ रहा है। दिनानुदिन यह साहित्य आशातीत रूप से प्रसारित हो रहा है। इससे ज्ञात होता है कि इसके प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ रहा है। वह चाहे 'उद्बोधन' के नाम से ही हो या पत्रिका में प्रकाशित जो भाव-राशि है, उसके प्रति आकर्षण के कारण हो। पत्रिका एक उपाय है। इस पत्रिका में जो सारी रचनाएँ छपती हैं वे पत्रिका की अपेक्षा काफी दूर तक प्रसारित होती हैं। इसलिए भाव का प्रसार ही मुख्य बात है। पत्रिका का प्रसार मुख्य बात नहीं है।

इस पत्रिका को घर-घर पहुँचा देने के लिए जिस प्रचार-कार्य की अपेक्षा है, वह प्रचार-कार्य हमलोग 'उद्बोधन' के लिए नहीं करते। हमलोग द्वार-द्वार जाकर इस पत्रिका को बेचने या इसके लिए ग्राहक बनाने का प्रयत्न नहीं करते। इस दृष्टिकोण से हम एक भाव का मूल्यांकन नहीं करेंगे। मूल्यांकन इस दृष्टिकोण से करेंगे कि इस आदर्श को ग्रहण करने की लोगों में कितनी उत्कंठा है। इस विषय में लोगों की आकांक्षा-उत्कंठा कई गुना बढ़ी है, यह हमलोग रामकृष्ण–विवेकानन्द साहित्य के प्रसार के माध्यम से समझ सकते हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि जब पुस्तक–मेला का आयोजन होता है तब हमलोगों की पुस्तकों की बिक्री सबसे अधिक होती है। इस ओर लोगों का इतना झुकाव है यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। यह चाहे 'उद्बोधन' पत्रिका के द्वारा हो या उन लोगों के द्वारा प्रकाशित पुस्तकराशि के द्वारा हो। इसी से हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जाता है।

स्वामीजी ने कहा था कि 'उद्बोधन' को बिना मूल्य के ही वितरण करना होगा। यह हमलोग नहीं कर पाये। फिर बिना मूल्य लिए ही वितरण करना सदैव फलदायी भी नहीं होता। अक्सर देखा जाता है कि बिना मूल्य लिये किसी वस्तु के देने पर, उस वस्तु पर लोगों का अधिक विश्वास नहीं रहता। एक उदाहरण याद आ रहा है। विगत दिनों में 'शिशिर' नामक एक पत्रिका मात्र

एक पैसे में वेची जाती थी। देखा जाता कि पत्रिका के निकलते ही कालेज स्ट्रीट के इलाके में ही इसकी सारी प्रतियाँ विक गयीं। कौन लोग खरीदते थे? खरीदते थे जूतों के दूकानदार। जूतों को लपेटकर देने के लिए वे 'शिशिर' की सारी प्रतियाँ खरीद लेते। मात्र एक पैसा मूल्य रहने पर भी यह दशा ! विना मूल्य के देने पर क्या होगा, सोचो ! इसी से केवल विना पैसा लेकर ही लोगों में इस पत्रिका का प्रसार नहीं होगा। सम्भवतः इसका मूल्यबोध कम हो जाएगा। 'उद्‌वोधन' पर हमलोग वहुत अधिक जोर नहीं देते। दे पाते नहीं। अन्य दिशाओं में हमलोगों के कार्य का क्षेत्र वहुत बढ़ गया है। इससे भी वड़ी वात यह है कि यह पत्रिका केवल मात्र वंग्ला भाषा-भाषियों के लिए है। फिर बंग्ला भाषा-भाषियों में भी जो श्रीरामकृष्ण—भावानुरागी हैं, उनलोगों के लिए है। फलतः इसके प्रचार-प्रसार का क्षेत्र वहुत सीमित है। 'उद्‌वोधन' के सम्वन्ध में इन सव वातों को हमें ध्यान में रखना होगा।

देश : कई लोग कहते है कि संघ और संगठन के विशालकाय हो जाने से एक अहंकार—मण्डल का निर्माण हो जाता है। श्रीरामकृष्ण संघ क्या उसी मण्डल में धीरे-धीरे आवद्ध हो गया है? अहंकार का घेरा क्या इसके चारों ओर निर्मित हो गया है?

भूतेशानन्दजी : हमलोग खुद इस विषय में बीच-बीच में सोचते है। और जिससे यह अहंवुद्धि नहीं जगे इसके लिए स्वयं को सावधान करते हैं। प्रयास करते हैं। किसी भी साधन के लिए मनुष्य को जी—जान से प्रयास करना पड़ता है। किन्तु सिद्धि उसी परिमाण में होगी, यह मान लेना ठीक नहीं। हमलोग साधक है। हम सिद्ध नहीं है।

देश : अनेक व्यक्ति आध्यात्मिक पिपासा और संशय लेकर—मठ मिशन के विभन्न केन्द्रों में दौड़े चले आते हैं। उनमें से अनेक यह दोषारोपण करते हैं कि दौड़े चले आने पर भी वे लोग वांछित साधु-संग-लाभ नहीं कर पाते, स्वभाव में सुधार और गुरुमुखी साधन-भजन के उपाय उन्हें उपलब्ध नहीं होते। मन का रिक्त-स्थान भर नहीं पाता। इन लोगों के दोषारोपण का क्या कारण है?

भूतेशानन्दजी : इसके दो कारण हैं। एक कारण तो यह है कि हमलोगों के शास्त्र में है—जो आकांक्षी (अभिलाषी) नहीं है, उसे देना नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि वह इसका मूल्यांकन नहीं कर सकेगा। इसी से, मठ-मिशन में जो आते हैं वे सव के सव धर्मपिपासु होकर ही आते हैं, ऐसी वात नहीं है। कई लोग मेला देखने भी आते हैं। अतएव, लोगों को दौड़े चले आते देखने से ही नहीं होगा। देखना यह होगा कि उनमें भाव का प्रसार कितना हुआ है। दूसरा कारण यह ह कि, यहाँ आने से ही सभी धर्म—वचन सुनना चाहते हैं, ऐसा भी नहीं है। अनेक ऐसे लोग आते हैं जो घूम—फिरकर लौट जाते हैं। संभवतः यहाँ बैठकर मैं धर्म-विषयक बातों का विवचेन कर रहा हूँ। वे आकर देखते हैं कि एक आदमी क्या सब वक्‌-वक्‌ करता है। वे अधिक देर रुकते नहीं। सुनते नहीं। चले जाते हैं। ठाकुर का भाव लेकर वे सब आते नहीं। नाम सुना है—वेलुड़ मठ। अतएव यहाँ आकर अनेकानेक दृश्य देखकर घर लौट जाते हैं। ये लोग वेलुड़ मठ के आदर्श को जानते नहीं तथा उस पिपासा को लेकर आते नहीं।

वाइबिल में यह वात लिखी हुई है कि अनेक लोग आएँगे, किन्तु उनमें से कम लोग ही गृहीत होंगे। धर्म की वात सदा से इसी प्रकार की हैं। सव के सब एक दम से चले ही जाते हैं, ऐसी वात नहीं है। फिर भी एक ऐसे स्थान के रहने की आवश्यकता है जहाँ थोड़े से लोगों की भी प्यास मिट सके। कठोपनिषद् में कहा गया है :

"श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-
आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।।"

अर्थात् "उनके (ईश्वर एवं आत्मतत्व के) विषय में चर्चा अनेक लोगों को सुनने को भी नहीं मिलती, बहुत से लोग सुनकर भी उन्हें नहीं समझ सकते। उनके (ईश्वर या आत्मतत्व के) के सम्बन्ध में वर्णन करनेवाले वक्ता भी दुर्लभ हैं। उन (ईश्वर या आत्मतत्व) को प्राप्त करने वाले भी एकाध ही होते हैं। फिर उन्हें जाननेवाला व्यक्ति (ज्ञाता) भी परम दुर्लभ है।" अतएव केवल लोगों की भीड़ देखने से काम नहीं चलेगा। सिनेमा देखनेवाले लोगों की जैसी भीड़ होगी, वैसी भीड़ क्या एक धर्म—कक्षा या धर्मग्रन्थ के पाठ में होगी? वैसी नहीं होगी। जिससे सहज ही रस मिल सकता है, उस वस्तु के प्रति लोगों में अधिक आकर्षण होता है। सात्विक रस उसे ही कहते हैं जिसे प्रयत्न करके प्राप्त किया जा सकता है। इसीसे यहाँ कम लोग रहेंगे ही। सदैव ऐसा ही रहेगा। अधिक लोग

एक साथ नहीं होंगे। थोड़े–से लोग धैर्यपूर्वक धर्मतत्व के विषय में सुनने आएँगे। फिर उनमें भी सक्रियतापूर्वक इस तत्व को ग्रहण करनेवाले लोग और भी कम होंगे। परन्तु ये ही लोग धर्मतत्व को बचाकर रखते हैं। वे मुट्ठीभर लोग हैं। धर्म को वे ही दो–चार व्यक्ति बचाकर रखते हैं, जिन्होंने धर्म को अपने जीवन के व्रत के रूप में ग्रहण किया है। अब हमलोगों का यह कर्तव्य है कि जो स्वाभावतः ईश्वर या आत्मतत्व को जानना चाहते हैं, उनके विषय में बातें सुनना चाहते हैं, उन लोगों को इसके लिए सुयोग प्रस्तुत कर दें। जहाँ तक कर सकें। यही लक्ष्य है।

देश : जो सचमुच ही अध्यात्म–रस के पिपासु हैं, वे भीड़ में खो जाते हैं कि नहीं?

भूतेशानन्दजी : नहीं। केवल वे ही खो जाते हैं, जो दृश्य देखकर घर चले जाते हैं। यथार्थ धर्म पिपासार्त प्राणी नहीं खोते हैं।

देश : इन पिपासुओं की अवस्था तब क्या स्थिर होती है? क्या वे साधुसंग प्राप्त करेंगे?

भूतेशानन्दजी : देखो, हमलोगों की कठिनाई यह है कि किसे जाकर कहूँगा, अरे, तुम ठाकुर की बात सुनो। जिसे कहा, उसने सम्भवतः सुनी नहीं। सम्भवतः उसका अभी भी समय नहीं हुआ है। ठाकुर जब उपदेश देते थे तब वे क्या किसी बाजार में उपदेश देते थे। कुछ मुट्ठीभर लोग उनके (ठाकुर के) जीवन और सन्देश से आकृष्ट हुए थे। उनकी संख्या कितनी कम है ! कितनी कम ! अतएव, खूब बाजार लगेगा (भीड़ होगी), बहुत सारे लोग आँएँगे–यह ठाकुर भी नहीं चाहते थे। इससे आदर्श क्षीण हो जाता है। उसे डाइल्युटेड (अल्प या सूक्ष्म) हो जाना होगा। केवल कुछ लोग अपने जीवन में आदर्श को पकड़े रखते हैं। उन्हीं कुछ लोगों में ही वह स्रोत प्रबल बना रहेगा। ऐसा नहीं होने पर यह एक 'मास मूवमेन्ट' (जन–आन्दोलन) जैसा होता है, वैसा हो जाएगा। और उसका स्थायित्व नहीं रहेगा। श्रीरामकृष्ण कहते थे, क्षणिक आवेश। आवेश के खत्म होते ही बहुत लोग चले जाते हैं। हमलोग तो देखते हैं कि इस देश में कितने ही धर्माचार्य या पैगम्बर आते हैं, जाते हैं। भारतवर्ष धर्म का देश है। यहाँ धर्माचार्यों का अभाव नहीं है। वे आते हैं, चले जाते हैं। लोग कुछ दिनों के लिए उनकी ओर आकृट होते हैं। किन्तु शाश्वत मूल्य के रूप में उनका मूल्यांकन नहीं होता। समय एक भयंकर परीक्षा की वस्तु है। समय में हर वस्तु की परीक्षा होती है। जिसमें मूल्य है, वह अधिक स्थायी होता है। और साधुसंग का अर्थ केवल साधु के निकट सदैव उपस्थित होना नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ है। साधु के आदर्श को ग्रहण करना।

{'उद्बोधन' की पूर्वोल्लिखित संख्या में साधु–संग के विषय में प्रेसिडेन्ट महाराज ने और अधिक विस्तारपूर्वक अपना अभिमत व्यक्त किया है। उन्होंने कहा है, "साधुसंग का अर्थ साधु के साथ सम्मिलित वास करना नहीं, साधु का आदर्श ग्रहण करना है। जिनके निकट जाने पर भगवान के सम्बन्ध में मन में चेतना जगे, मन में सत्–विचार आवे, उनको ही साधु कहते हैं। प्रसंगवश एक घटना याद आती है। एक नवागंतुक व्यक्ति उद्बोधन में स्वामी सारदानन्दजी महाराज के समीप गये हैं। कहते हैं, साधु–संग करने आया हूँ। सारदानन्द महाराज ने कहा, बच्चा, ठाकुर जब दक्षिणेश्वर में थे तब कालीबाड़ी के रसोइया–नौकर चौबीसों घन्टे उनके साथ रहते, पास–पड़ोस के लोग भी प्रतिदिन प्रायः आया–जाया करते। वर्ष के वर्ष इसी प्रकार चलते रहे। किन्तु उनलोगों के जीवन में कोई बदलाव हुआ हो ऐसा तो सुना नहीं जाता। साधु के जीवन से जो शिक्षा मिलती है उसे ग्रहण करने के लिए एक प्रवृत्ति होनी चाहिए। यह नहीं होने पर वह साधु–संग किसी काम का नहीं होता।" पृ०–१२७}

देश : श्रीमाँ ने एक बार कहा था, श्रीरामकृष्ण का आश्रय जो एक बार ग्रहण करेगा, जो उनकी शरण में जाएगा उसे कभी मोटे भोजन–वसन की कमी नहीं होगी। प्रश्न यह है कि इतना बड़ा आश्वासन पाकर ही क्या प्रत्येक वर्ष अनेक लोग श्रीरामकृष्ण–मंत्र में दीक्षित होते हैं? अथवा आध्यात्मिक अभाव का बोध मनुष्य को श्रीरामकृष्ण की ओर उन्मुख कर रहा है? इनमें कौन सा सही है। आप रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष हैं और दीक्षामंत्र देनेवाले गुरु भी। इसीसे आपसे मैंने यह प्रश्न किया है।

भूतेशानन्दजी : बात थोड़ी उल्टी हो गयी। ठाकुर ने कहा था, जो लोग यहाँ आएँगे उनका यह अन्तिम जन्म होगा। अर्थात् जिनके भीतर श्रीरामकृष्ण द्वारा दिखाया गया आध्यात्मिक भाव जाग्रत होगा वे मुक्त हो जाएँगे। और श्रीमाँ ने ठाकुर के नाम पर संसार का परित्याग कर जो साधु हुए हैं उनके सम्बन्ध में ठाकुर से यह कहकर प्रार्थना की थी, "तुम्हारे नाम पर अपना सब कुछ त्यागकर मेरे बच्चे थोड़े अन्न के लिए भटकते फिरेंगे, यह मुझसे देखा नहीं जायगा। मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम्हारे नाम पर

जो निकलेंगे, उन्हें साधारण खाने–पहनने का अभाव न हो। वे सभी तुम्हें और तुम्हारे उपदेशों तथा भावों को लेकर एक साथ रहेंगे, और सांसारिक दुःखों से जर्जरित मनुष्य उनके पास आकर तुम्हारी बातें सुनकर शान्ति पायेंगे।'' उन्हीं माँ के आशीर्वाद से हमलोगों को साधारण खाने–पहनने का अभाव कभी नहीं होता। कभी नहीं होता।

देश : यह तो आपलोगों की बात हुई। परन्तु जो संसारी, सामान्य गृहस्थजन दीक्षा लेते हैं, उनका क्या दृष्टिकोण है? वे क्यों आते हैं?

भूतेशानन्दजी : वे लोग दैहिक अभावों को मिटाने के उद्देश्य से नहीं आते। आत्मिक अभाव दूर करने के लिए आते हैं। दैहिक अभाव दूर होंगे–सम्भवतः कोई–कोई ऐसी कल्पना करता है। किन्तु ऐसा होता नहीं। दीक्षा लेने से निर्धन धनी होगा और जो धनी व्यक्ति है वह और अधिक धनी होगा–ऐसा सोचना गलत है। निर्धन और धनी–ये दोनों ही वस्तुतः मन की दरिद्रता मिटाने के लिए भगवान को चाहते हैं। शान्ति मिलेगी–इसी लालसा से यहाँ सभी आते हैं। वही जो माँ ने ठाकुर से कहा था: ''तुम्हारी बातें सुनकर शान्ति पायेंगे।''–उसी शान्ति की आशा से तापतप्त मनुष्य श्रीरामकृष्ण के पास दौड़े चले आते हैं। और किसी कुछ के लिए नहीं। .....

बातचीत यहीं समाप्त हो गयी। प्रेसिडेन्ट महाराज ने थोड़ी देर चुप रहकर स्वगत-कथन की भाँति कहा, ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) के भावों को कार्य रूप में परिणत करने में डेढ़ हजार वर्ष लगेंगे। हमलोगों के इतना अधीर होने से काम नहीं चलेगा। उस समय मठ का प्रांगण दर्शनार्थियों और भक्तों के समागम से भर गया था।

(कृतज्ञता : स्वामी नित्यमुक्तानन्द, स्वामी भनेश्वरानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द एवं अमरेश चन्द्र भट्टाचार्य)

एक परमात्मा, एक तू

एक वार मसजिद में नमाज अदा करने के बाद मुहम्मद साहब ने इमामों और उपस्थित लोगों से पूछा, ''आपके पास क्या-क्या है?'' हजरत उमर ने जवाव दिया, ''मेरी बीवी हैं और बेटे-बेटियाँ हैं, ऊँट है, और भी काफी सामान-असबाब है।'' इसी प्रकार दूसरों ने भी अपनी-अपनी मिल्कीयत की चीजें गिना दीं। जब हजरत अली की बारी आयी, तो वे बोले, ''मेरा अपना कहने लायक तो केवल एक खुदा है और एक तू है इनके अलावा और कोई नहीं, जिन्हें मैं 'अपना' कह सकूँ।'' यह सुन मुहम्मद साहव वोले, ''अली की वात विल्कुल सही है। दुनिया में ऐसी कोई भी चीज नहीं जिसे हम 'अपना' कह सकें, क्योंकि बुरे दिन आने पर 'अपना' कहलानेवाले सभी लोग साये की तरह भाग जाते हैं। दुनियादारी में जो ज्यादा फँसा रहता है, वह खुदा से वहुत दूर चला जाता है, और जो केवल खुदा पर भरोसा करता है, और उसी से प्यार करता है, खुदा उसे हरदम अपने पास रखता है।''

जिज्ञासुओं के प्रश्न : स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के उत्तर

{रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के वर्तमान अध्यक्ष, परम पावन श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज रामकृष्ण–विवेकानन्द भावादर्श एवं वेदान्त के शाश्वत मूल्यों पर विभिन्न देशों में अक्सर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किये जाते रहे हैं। सन् १९८२ ई० में उनकी तीन सप्ताहों की अमेरिका की व्याख्यान यात्रा के दौरान शिकागों के कुछ जिज्ञासुओं ने एक प्रश्नोत्तर–सत्र में उनसे जो प्रश्न किये थे, पूज्य महाराज जी ने उन प्रश्नों के बड़े ही तत्वपूर्ण एवं तथ्यपूर्ण उत्तर दिये थे। इन्हीं प्रश्नोत्तरों को यहाँ अँग्रेजी से अनूदित कर, हम प्रकाशित कर रहे हैं। यह प्रश्नोत्तर–सत्र विवेकानन्द सोसाइटी, साउथ हाइड पार्क, बेलवार्ड, शिकागो के प्रधान स्वामी भाष्यानन्दजी के आग्रह पर वहीं आयोजित हुआ था। पाठकों के लिए ये प्रश्नोत्तर विशेष उपयोगी सिद्ध होंगे।}

अनुवादक हैं–डॉ० केदारनाथ लाभ–सं०

प्रश्न : *दूसरे के धर्म की अपेक्षा अपने धर्म का, चाहे वह दूसरे धर्म से गुणरहित ही क्यों न हो भली भाँति आचरण करना अति उत्तम है। स्वधर्म में मरना जीवन है, परन्तु दूसरों के धर्म में जीवन यापन करना भी मृत्यु है। मुझे प्रायः सन्देह होता है कि क्या एक पश्चिम देशवासी सही-सही हिन्दू हो सकता है? वेदान्त तत्त्वज्ञान के अन्दर क्या पश्चिम देशवासी द्वारा हिन्दू धर्म ग्रहण करना वस्तुतः सम्भव है?*

स्वामी रंगनाथानन्द जी : इस प्रश्न का उत्तर दो दृष्टिकोणों से दिया जा सकता है। सामान्यतः विगत हजारों वर्षों में हिन्दू धर्म में अन्यधर्मावलम्बियों का धर्मान्तरण बहुत कम हुआ या बिल्कुल हुआ ही नहीं। १७ वीं शताब्दी में मुगल काल तक 'हिन्दू धर्म'-नाम का अस्तित्व तक नहीं था। इसे सनातन धर्म के रुप में जाना जाता था। हिन्दू धर्म का विकास बिना किसी प्रकार के धर्मान्तरण के हुआ। तथापि, इन दिनों भारत में अनेक हिन्दू एजेंसियाँ (अभिकरण) हैं जो गैर हिन्दू धर्म के उन लोगों के धर्मान्तरण की चेष्टा करती हैं जो हिन्दू होने के इच्छुक हैं। रामकृष्ण संघ ऐसा नहीं करता। इसका कारण मात्र यह है कि हम यह विश्वास करते हैं कि सभी धर्म सत्य हैं तथा सभी पथ तुम्हें परमोच्च लक्ष्य की प्राप्ति करा सकते हैं। किन्तु, यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि 'मैं हिन्दू हूँ', तो हम इसे सहज भाव से स्वीकार करते हैं तथा उस व्यक्ति के साथ उसी दृष्टिकोण से व्यवहार करते हैं। ऐसे लोगों के लिए कोई धर्मानुष्ठान नहीं है, किसी प्रकार का बपतिस्मा (शुद्ध करने या दीक्षित करने की क्रिया) नहीं है। वे मात्र यह कहते हैं, 'हमलोग हिन्दू धर्म की प्रशंसा करते हैं और उसका अनुसरण करते हैं।' इस विषय में और अधिक कुछ नहीं है। लोग कहते हैं 'हमलोग हिन्दू हैं' और वे हिन्दू धर्म के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पथों को उसी प्रकार अंगीकार कर लेते हैं जैसे दक्षिण पूर्व एशिया और अन्य देशों के लोग करते हैं। यदि कोई यह कहता या कहती है कि 'मैं हिन्दू हूँ' तो ऐसे व्यक्ति को हमलोग हिन्दू मानते हैं। यह बात जहाँ तक हमलोगों के रामकृष्ण संघ का सम्बन्ध है, लागू होती है। कुछ ऐसी हिन्दू एजेंसियाँ हैं जो उन लोगों का पुनः धर्मान्तरण कर रही हैं जो हिन्दू धर्म में प्रत्यागमन के इच्छुक हैं। कई लोग विभिन्न प्रलोभनों, खासकर आर्थिक प्रलोभन के कारण हिन्दू धर्म छोड़कर बाहर चले गये थे। अनेक गरीब हिन्दू, विशेष कर ईसाई सम्प्रदायों के द्वारा, हिन्दू धर्म से बाहर निकाल लिये गये थे। इसीलिए, हिन्दूधर्म अपनी नीति में परिवर्तन कर रहा है, महज इसलिए कि वर्तमान काल में विभिन्न मिशिनरी धर्मों द्वारा इस पर आक्रमण किया जा रहा है, और यह भारतीय उपमहादेश में सद्भाव के प्रति एक अनर्थकारी बाधा के रुप में कार्य कर रहे हैं। अतएव, नये आन्दोलन उठ खड़े हुए हैं जो ऐसे लोगों का इस प्रकार का पुनः धर्मान्तरण करने की शुरुआत करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जो अपने धर्म से बाहर निकाल लिये गये थे। लेकिन इसके लिए वे मान-मनौवल का तरीका अपना रहे हैं। और वे बिना किसी आर्थिक प्रलोभन के प्रस्ताव के अपने धर्म में वापस लौटते हैं।

हिन्दू धर्मान्तरण की आज यही स्थिति है। वस्तुतः 'हिन्दू'

शब्द का साधारण अर्थ है, खासकर इसलिए कि यह अर्थ स्वयं हिन्दुओं द्वारा नहीं दिया गया है, और इस शब्द का किसी हिन्दू शास्त्र में उल्लेख नहीं है। यह संयोग से, बिना जाने बूझे आ गया। पहले 'हिन्दू' शब्द एक क्षेत्र से जुड़ा मात्र एक नाम था। हर एक व्यक्ति जो सिन्धु नदी के पूरब में रहता था वह फारसियों द्वारा हिन्दू कहा जाता था। वास्तव में जब मैं स्पेन गया, वहाँ के लोगों ने मुझ से कहा, 'इण्डियन' (भारतीय) शब्द का प्रयोग नहीं कीजिए; हमलोगों के इण्डियन का अर्थ है रेड इण्डियन। आप अपने को हिन्दू कहिए। हमलोग-हिन्दू, मुसलमान, ईसाई-सब को हिन्दू समझते हैं।' करीब १०० वर्ष पहले तक हमारा देश, यहाँ तक कि मुसलमान शासकों के द्वारा भी—हिन्दुस्तान कहा जाता था; क्योंकि 'हिन्दू' शब्द एक क्षेत्र या राज्य का सूचक होता था। हिन्दू लोग अपने धर्म को हिन्दू धर्म या किसी अन्य नाम से सम्बोधित नहीं करते थे, बल्कि उसे 'सनातन धर्म' कहते थे जिसमें अनेक धर्म एक सामान्य आध्यात्मिक बन्धन के द्वारा संघबद्ध होकर समाहित हो गये हैं।

हिन्दू धर्म का यही तात्विक स्वरूप है। विश्व के समस्त धर्म वेदान्त द्वारा प्रदत्त सामान्य बन्धन के अन्तर्गत एक साथ लाये जा सकते हैं, जिससे प्रत्येक धर्म की अपनी स्वतंत्रता और स्वाभाविकता अक्षुण्ण बनी रहे। युग-युगान्तर से धर्म के प्रति भारत का यही दृष्टिकोण रहा है। परन्तु, घोर धर्म प्रचारी (मिशनराइजिंग) धर्मों—जो अपने आधार को राजनैतिक सुदृढ़ता प्रदान करने के उद्देश्य से भारत के गरीब तबके के लोगों का धर्मान्तरण करने के लिए हर तरह का हथकंडा अपनाते हैं—के दबाव के कारण, आधुनिक भारत को कुछ ऐसे आन्दोलन छेड़ने पड़े थे, जिन्होंने लोगों को हिन्दू धर्म में प्रत्यागमन के लिए धर्मान्तरण शुरु किया, क्योंकि अब तक हिन्दू धर्म के पास बाहर निकलने (बहिर्गमन) का ही एक दरवाजा था, लेकिन भीतर आने (अन्तर आगमन) का कोई दरवाजा नहीं था। इसे वर्तमान समय में खतरनाक समझा गया यह स्वयं भारत के स्वरुप को ही बदल देगा। हिन्दू धर्म प्रत्येक समुदाय को स्वाधीनता, जबरदस्त स्वाधीनता प्रदान करता है। मान लो कि धर्मान्तरण करने वाले धर्मों में से कोई एक धर्म प्रबल और प्रमुख हो जाता है, तब तो प्राचीन भारत ही मर जायगा, वह उदार परिवेश ही समाप्त हो जायगा, क्योंकि यह उदारता किसी अन्य धर्म में नहीं पायी जाती। यह प्रवृत्ति, यह स्वीकृति, यह सहिष्णुता, हरेक धर्म के लिए यह समादर का भाव किसी दूसरे देश में नहीं है। इस प्रगतिशील हिन्दू मनोवृत्ति का भारत में विनाश हो जायगा और कोई अन्य धर्म इसका विलक्षण स्थान नहीं ले सकता। वह प्राचीन भारत मर जायगा और कोई व्यक्ति इसे पसन्द नहीं करेगा। इससे विश्व और अधिक विपन्न हो जायगा। इसलिए ये नये हिन्दू आन्दोलन उन लोगों को अपने में वापस ले रहे हैं जो बहिर्भूत हो गये हैं, लेकिन यह भी केवल समझाने-बुझाने के शान्तिपूर्ण तरीकों से। 'तीन पीढ़ियाँ पूर्व, तुम सब हिन्दू थे। अगर तुम्हें लगता हो कि यह धर्म सुन्दर है तो तुम लौट आ सकते हो।' अनेक लोग मुझसे कहते हैं कि वे इस प्रकार का कार्य कर रहे हैं। भारत में हिन्दू धर्म में धर्मान्तरण के विषय में अभी यही हो रहा है।

प्रश्न : *आपने कहा कि भारत में कुछ धार्मिक गतिविधियों के कारण लोगों को एक दूसरे के साथ भाव-संप्रेषण में कुछ अवरोधों और बाधाओं का सामना करना पड़ता है। मैं समझता हूँ कि आप उन धार्मिक प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में कह रहे हैं जो हिन्दुओं को अन्य प्रकार के धर्मों में धर्मान्तरित करने का प्रयास करते हैं। पश्चिम में ईसाई रहस्यवाद, खासकर जर्मन और स्पैनिश रहस्यवादियों में, तथा परमोच्च सत्ता के लिए उनकी खोज तथा आत्म का परमात्म में विलीनीकरण को ध्यान में रखते हुए ईसाइयों और हिन्दुओं के बीच प्रामाणिक एकत्व की इस खोज में क्या आप किसी सहयोग की सम्भावना देखते हैं?*

स्वामी रंगनाथानन्द जी : वर्त्तमान काल में इसकी प्रचुर सम्भावनाएँ हैं, क्योंकि आज विश्व वस्तुतः आध्यात्मिक आहार का भूखा है। परन्तु ईसा मसीह के शब्दों में, धर्म सामान्यतः केवल पत्थर देते हैं, रोटी नहीं ('.....इस पत्थर से कह,कि रोटी बन जाए।' संत लूका, ४—३)। ईसाई धर्म और हिन्दू धर्म तथा अन्य धर्मों में आध्यात्मिकता—प्रवण लोगों के सहयोग से तुम मतों और संकीर्ण धर्मान्धतापूर्ण विचारों के 'पत्थरों' की अपेक्षा आध्यात्मिक आहार प्रदान करने की इस क्षमता के विकास का अनुभव करोगे। प्रत्येक धर्म में औपचारिक मतवादी आयाम है और उन्नत करनेवाला आध्यात्मिक आयाम भी है। आज लोग आध्यात्मिक आयाम की तलाश कर रहे हैं। आधार के रूप में औपचारिक धर्म की जरूरत है, धर्म के अन्तिम आशीर्वचन या स्वस्त्ययन के रूप में नहीं। इस तरह, केवल हिन्दू धर्म ही धर्म के औपचारिक और आध्यात्मिक पक्षों में स्पष्ट भेद करता है। हिन्दू धर्म की यह एक असाधारण विशेषता है। जो व्यक्ति केवल औपचारिक पक्ष से सम्बन्ध रखता है उसे अत्यन्त साधारण—उदाहरण के तौर पर बिल्कुल एक पुजारी की तरह—समझा जाता है। इस वर्ग के लोगों का अधिक समादर

नहीं होता। परन्तु एक ईश्वरीय–मानव वह पुरुष या स्त्री जिसने वस्तुतः ईश्वर का साक्षात्कार किया है–का भारत में अत्यधिक समादर होता है। अतः आध्यात्मिक जीवन जीने वाला एक ईसाई या एक मुसलमान भारत में परम समादृत होगा। हिन्दू परम्परा का यही स्वरुप है। इस परम्परा का शेष जगत् के लिए भी भारी महत्व है। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिकता है, तुम उसके लेबल (नाम-पत्र) को नहीं देखते। आध्यात्मिकता का कोई लेबल (नाम-पत्र या चिन्ह) नहीं होता, यद्यपि हिन्दू या ईसाई आधार हो सकता है। इसलिए, जब कोई व्यक्ति वस्तुतः आध्यात्मिक होता है, वह पंथ सम्प्रदाय और वर्ग के भेदों से परे हो जाता है जिससे एक अत्यन्त आध्यात्मिक ईसाई प्रत्येक व्यक्ति द्वारा समादृत होगा, क्योंकि उस पुरुष या स्त्री ने कुछ ऐसा उपलब्ध कर लिया है जिसकी हम सब तलाश कर रहे हैं। यहीं तुम्हें आध्यात्मिक अनुभूति की सर्वव्यापकता मिलेगी; और यहीं तुम व्यापक सहयोग प्राप्त कर सकते हो। धर्म के इन सारे गैर ईसाई आयामों की प्रमुखता के कारण, निम्न स्तर पर सहयोग व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव है। वे धर्मान्तरण के पीछे पड़े हुए हैं, वे अपनी राजनीतिक संख्या बढ़ाने के पीछे पड़े हुए हैं। आध्यात्मिक जीवन में धर्मान्तरण का कोई अर्थ नहीं है। मैं कह सकता हूँ कि 'मैं एक दुष्टात्मा या पापी व्यक्ति हूँ, मैं अपना धर्म बदल रहा हूँ।' इससे मैं क्या हो जाता हूँ? मेरी दुष्टता नहीं गयी है, केवल मेरा स्थान जनगणना के एक स्तम्भ से जनगणना के दूसरे स्तम्भ में बदल गया है। केवल इतना ही हुआ है, जबकि धर्मान्तरण के द्वारा यदि मेरे सम्पूर्ण चरित्र में बदलाव आ गया है तो यह उत्तम है। धर्मान्तरण का यही मूलभूत आरम्भिक अर्थ था।

जब मैंने 'कनफेशन्स ऑफ सेंट ऑगस्टिन' (संत ऑगस्टिन की पाप स्वीकृति) नामक प्रसिद्ध पुस्तक पढ़ी, तब मुझे धर्मान्तरण के वास्तविक अर्थ के सत्य का बोध हुआ। चौथी शताब्दी का यह बुद्धिजीवी, जो नशाखोरी के व्यसन और हर प्रकार के पाप में डूबा हुआ था, किन्तु महान् बौद्धिक प्राणी था, आध्यात्मिक होने के लिए कुछ दिनों से कोशिश कर रहा था। वह इन दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। उसकी माँ, मोनिका, उसके लिए प्रार्थना कर रही थी। और एक दिन धर्मान्तरण या मन-परिवर्तन का जादू घटित हो गया। उस धर्म परिवर्तन का क्या स्वरूप था? यह सांसारिकता से आध्यात्मिकता में, सांसारिक जीवन से ईश्वरीय जीवन में धर्मान्तरण था। वह उसके जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्त्तन है, और ऑगस्टिन उस प्रसिद्ध पुस्तक में इसका सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करता है। वह चींख पड़ता है : 'हे प्रभु ! इस परिवर्तन के लिए मैं कब तक प्रतीक्षा करता रहूँ ? कब तक ? कल ? आज क्यों नहीं ? बिल्कुल अभी क्यों नहीं ? मैं बिल्कुल इसी क्षण अपने घटियापन से भरे दुःख का अन्त क्यों नहीं देखूँ ?' यही वह प्रार्थना थी जो उसके हृदय से निःसृत हुई थी। और बिल्कुल उसी क्षण वह ईश्वरान्वेषक आत्मा के रूप में रूपान्तरित हो गया। अतः इस प्रकार का धर्मान्तरण वस्तुतः सार्थक है। यह सीधी गति है, जब कि दूसरा–चरित्र तथा दृष्टिकोण में बिना किसी प्रकार के परिवर्त्तन के लोगों के धर्म का इस धर्म से उस धर्म में परिवर्तन करना पार्श्विक गति है।

आध्यात्मिक स्तर पर इस प्रकार का सहयोग न केवल संभव है बल्कि मानवजाति के कल्याण के लिए आज परम आवश्यक भी है। संसार आध्यात्मिक आहार ढूँढ़ता है। यह आहार ईसाई धर्म में, हिन्दू धर्म में, यहूदी धर्म में और इस्लाम धर्म में उपलब्ध है। इन सब विभिन्न आम्नायों में आध्यात्मिकता का विशाल भाण्डार है। प्रत्येक आम्नाय ने महान् संतों एवं ऋषियों को उत्पन्न किया है। अतः जिस महा भौतिक युग में हम रह रहे हैं, उसके उपयोग के लिए वर्तमान काल में 'संसाधनों का एकत्रीकरण उपयुक्त कार्य है। इस कार्य की प्रबल सम्भावना है और वर्तमान युग में श्रीरामकृष्ण का आगमन इस प्रकार के सहयोग को एक उच्चतर स्तर पर सम्भव बनाता है। वे समन्वय के सर्वथा साकार रूप थे।

प्रश्न : *मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या आप वास्तविक स्वामी और नकली स्वामी में क्या भेद है–इसे समझने में अमेरिकियों की सहायता करेंगे? अनेक स्वामी इन दिनों अमेरिका आ रहे हैं। आप हमलोगों को कुछ ऐसे सूत्र बतावें जिनसे हम समझ सकें कि कौन क्या है?*

स्वामी रंगनाथानन्द जी : यह एक ऐसी समस्या है जो हर कहीं दिखाई पड़ती है–भारत में भी। वहाँ भी बहुत तरह के गुरू चारों ओर फैले हैं। हमारी आध्यात्मिक परम्परा में आध्यात्मिक गुरू का एक मानदण्ड प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम आध्यात्मिक गुरू (पुरुष या स्त्री) को निश्चय पूर्वक शुद्ध और पवित्र होना चाहिए, आध्यात्मिक जीवन का उत्तम अध्येता (श्रोत्रिय) होना चाहिए तथा शास्त्रों को आचरित किये होना चाहिए। द्वितीयतः उसे (पुरुष या स्त्री गुरू को) अवश्यमेव अपने पास आये शिष्यों के प्रति निःस्वार्थ प्रेम होना चाहिए। और अंत में, उसे (पुरुष या स्त्री गुरू को) धर्म का व्यापार (विक्रय) नहीं करना चाहिए। धर्म को बेचने की निन्दा हमारे समस्त शास्त्रों में की गयी है, क्योंकि धर्म परम पवित्र वस्तु

है। पूरे भारत के धार्मिक इतिहास में इन तथ्यों पर सर्वत्र जोर दिया गया है। गुरू किसी व्यक्ति को करुणा और प्रेम के कारण धर्मोपदेश देता है। यदि वह धर्म को बेचता या बेचेती है तो उसके द्वारा धर्म का विनाश हो जाता है। अतः मैं यहाँ लोगों को केवल यही कह सकता हूँ – ऐसे लोगों से सावधान रहो जो धर्म बेचते हैं तथा जो इस प्रकार के बड़े–बड़े वादे करते हैं, 'तुम शीघ्र ही आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर लोगे।' धर्म में तत्क्षण सिद्धि नामक कोई वस्तु नहीं है। तुम्हें धीरे–धीरे और अनवरत रूप से चलना है। अतएव, यहाँ के लोगों को यह कहा जाना चाहिए कि धर्म इतना सस्ता नहीं है। तुम तीन ही महीनों में मुक्ति–लाभ नहीं कर सकते। इसे एक सम्पुट (कैपसूल) में नहीं दिया जा सकता। लोगों को इन सब भावों से अवश्य अवगत होना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन एक विकट संघर्ष है। तुम्हारे भीतर अव्यक्त रूप में ब्रह्म अवस्थित है। इसे व्यक्त करने या इसका अनुभव प्राप्त करने के लिए तुम्हें संघर्ष करना होगा, साधना करनी होगी। अतः जब लोगों को इस विषय की जानकारी हो जायगी तब, मैं नहीं समझता कि कोई हल्का या साधारण गुरू किसी के मन को बिगाड़ने में समर्थ नहीं हो सकेगा।

यहाँ तक कि भारत में भी, बहुत से लोग यह नहीं जानते कि धर्म क्या है ? अतः जो तुरन्त आध्यात्मिक फल प्रदान करने का वादा करता है वह दूसरों की अपेक्षा अधिक आसानी से शिष्य प्राप्त कर लेता है। यह एक राजनीतिक दल की भाँति है जो पृथ्वी पर हर वस्तु को यह कहकर उपलब्ध कराने का वादा करता है–'अगर तुम मुझे चुन लो।' इसी तरह धर्म के नाम पर भी लोगों को ठग लिया जाता है। लोगों को स्वयं अवश्यमेव कुछ दायत्वि वहन करने चाहिए। उन्हें मालूम होना चाहिए कि धर्म इतना सस्ता नहीं है, यह एक गम्भीर विषय है। किसी को गुरू के रूप में स्वीकार करने के पहले लोगों को गहराई से सोच-विचार कर लेना चाहिए। गुरू की खोज धर्म नहीं है, ईश्वर की खोज धर्म है। यहाँ, श्रीरामकृष्ण देव का परामर्श बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा,'साधु को दिन में देखो, रात में देखो, और तभी उस पर विश्वास करो।

(श्रीरामकृष्ण द ग्रेट मास्टर, पृ० ६०६)

प्रश्न : *कुछ सम्प्रदायों में आप से गुरु की ईश्वर रूप में उपासना करने की अपेक्षा की जाती है। क्या आपके पंथ में भी यह बात लागू होती है?*

स्वामी रंगनाथानन्द जी : एक सामान्य उपदेश यह है कि ईश्वर तुम्हारे पास गुरु के रूप में आते हैं, क्योंकि सच्चा गुरु स्वयं ईश्वर ही है। जैसा कि श्रीरामकृष्ण कहा करते थे 'सच्चिदानन्द ही गुरु के रूप में आते हैं ·····उन्हें (गुरु को) साक्षात् ईश्वर मानना होगा' (श्रीरामकृष्ण वचनामृत : प्रथम खंड : पृ० ४५७)। परन्तु वे गुरु, मनुष्य के रूप में इस विशेष गुरु के माध्यम से तुम्हारे पास आते हैं। इसलिए, हमलोग इन मानव गुरु को उन परम गुरु के प्रतीक के रूप में मानते है। आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक है। यही इसका अधिकतम अर्थ है। यह कोई सम्प्रदाय या पंथ का निर्माण नहीं करता। उपासना का मुख्य लक्ष्य स्वयं ईश्वर हैं, गुरु नहीं। गुरु बताते हैं, 'यही तुम्हारा मार्ग है, यही तुम्हारें इष्ट हैं', और अपने शिष्य को आशीर्वाद देते हैं। श्रीरामकृष्ण कहते है, 'गुरु (शिष्य के) सामने आकर कहते हैं "यह देख अपना इष्ट।" फिर गुरु इष्ट में लीन हो जाते हैं। जो गुरु हैं वे ही इष्ट हैं।' (वचनामृतः प्रथम खण्ड पृष्ठ २२७) यही गुरु का कार्य हैं। चूँकि उन्होंने यह सहायता की है, इसलिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं, हम उनकी आराधना करते हैं, हम उनका सम्मान करते हैं, यही भाव है सभी आध्यात्मिक मतों में-सूफी और ईसाई मतों में भी–गुरु, जो किसी व्यक्ति को अध्यात्म मार्ग में अग्रसर करते है, परमादृत होते हैं। बौद्ध धर्म और जैने धर्म में गुरु को परम श्रद्धा निवेदित की जाती है। ■

अमृत वाणी

निःस्वार्थता ही धर्म की कसौटी है। जो जितना अधिक निःस्वार्थी है, वह उतना ही अधिक आध्यात्मिक है और शिव के समीप है। और वह यदि स्वार्थी है, तो उसने चाहे सभी मन्दिरों में दर्शन किये हो, चाहे सभी तीर्थों का भ्रमण किया हो, चाहे वह रँगे हुये चीते के समान हो फिर भी वह शिव से बहुत दूर है।

–स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान-(८)

- स्वामी शशांकाननद
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची (बिहार)

•रावण ने कहा अरे यह भी कोई बात है। स्वभाव पर नियंत्रण रखना चाहिए। हनुमान जी ने कहा अरे 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे।' अरे रावण जब शूपर्णरखा ने तुझे चेताया -

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरूष सिंह बन खेलन आए।।
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी।।

और लक्ष्मण ने शूपर्णखा की नाक काट दी। उसकी अवस्था सुनकर जब खर दूषण राम से लड़ने गए तो -

खर दूषण सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा।।
खर दूषण तिसिरा कर घाता। सुनि दस सीस जरे सब गाता।।

और हे रावण ! खर दूषण के वध की सूचना पर तूने भली प्रकार जान लिया था कि वे भगवान ही है।

खर दूषण मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता।।
सुररंजन भंजन महिमारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा।।

इतना जानते हुए भी हे रावण ! तू स्वभाववश उनका भजन नहीं कर सकता। अपने मन पर नियंत्रण न करके तूने अपने स्वभाव के अनुसार ही पथ चुना।

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा।।
तो मैं जाई बैरू हठि करहूँ। प्रभु सर प्राण तजे भव तरऊँ।।

हे रावण जब तू ही अपने स्वभाव पर नियंत्रण नहीं कर सकता तब तू मुझे नियन्त्रण का पाठ कैसे सिखाता है? अब स्वामीजी के जीवन में देखें।

अलवर के महाराज ने ब्रिटिश सरकार के प्रभाव में आकर प्रायः पाश्चात्य सभ्यता स्वीकार कर ली और उनका रहन-सहन, खाना-पीना, चलना-फिरना सब में परिवर्तन आ गया। भौतिकवादी ये महाराजा राज कार्यों में मन ने देकर शिकार पर जाते और उसी में अपना अधिक समय बिताते। उन्होंने जब सुना कि एक संन्यासी जो अंग्रेजी जानते हैं आए हैं, तो दीवान जी के आग्रह से वे स्वामीजी से भेंट करने दिवान जी के घर पर गए। वार्तालाप के बीच महाराज ने स्वामीजी से कहा—स्वामीजी महाराज! मैंने सुना है कि आप धुरन्धर पण्डित हैं तथा एक बड़े विद्वान व्यक्ति हैं। आप यदि चाहें तो प्रचुर धन उपार्जन कर सकते है, फिर भी आपने भिक्षा-वृत्ति का अवलम्बन क्यों किया?"

उत्तर में अविचल भाव से स्वामी जी ने कहा, "महाराज, पहले मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिए। आप राज कार्य की अवहेलना करते हुए क्यों साहबों के साथ शिकार आदि में व्यर्थ के आमोद-प्रमोद में अपना समय बिताते हैं?"

राजा ने कहा, "हाँ करता हूँ। पर क्यों, यह नहीं कह सकता। इतना जरूर कह सकता हूँ कि मुझे अच्छा लगता है।" तब स्वामी जी ने हँसते हुए कहा, "राजन ! बस इसीलिए मैं भी फकीर के वेश में इधर-उधर घूमता फिरता हूँ, कि यह मुझे अच्छा लगता है" अतः मैं अपने स्वभाव से मजबूर हूँ और तुम भी। स्वामीजी ने अलवर के महाराजा के माध्यम से भौतिकवादी रावण को अपने बल का अहसास कराया। कल्याण तो स्वभाव पर नियंत्रण पाने में ही है। महाराजा अलवर ने स्वामी जी के उपदेश को शिरोधार्य कर उनका शिष्यतव ग्रहण किया और अध्यात्मवाद की शरण ली।

परन्तु रावण ने हनुमान जी के समझाने पर ऐसा नहीं किया। और रावण तूने जो पूछा है - "केहिं के बल घालेसि वन खीसा।" किसके बल पर मैंने वन उजाड़ डाला तो सुन -

सुन रावण ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल विरचित माया।।

हे रावण जिनका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्राह्माण्डों के समूहों की रचना करती है।

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दस सीसा।।
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन।।

जिसके बल पर ब्रह्मा विष्णु और शिव सृजन पालन और संहार करते हैं, जिनके बल पर शेषनाग गिरि वन समेत समस्त ब्रह्माण्ड को सिर पर धारण करते हैं, उनके बल पर मैंने वन उजाड़ा है।

रावण ने कहा—रे शठ, तू कुछ नहीं जानता। देवतागण तो मेरे कारागार में पड़े हैं उनकी कौन रक्षा करेगा?

की धौं श्रवण सुनेसि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही।।

क्या तूने मेरा नाम और यश अपने कानों से नहीं सुना। रे शठ तुझे तो बड़ा ही निःशंक देख रहा हूँ।

हनुमान जी महाराज ने कहा, रे रावण ! शठ तो तुझे मैं दीख रहा हूँ पर वास्तव में शठ तो तू हैं जिसे शिक्षा देने के लिए मेरे स्वामी भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं।

धरइ जो विविध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता।।

इस बार वे ही मेरे स्वामी भगवान् अयोध्यापति राम बनकर आए हैं।

जाके वल लवलेस ते जितेहू चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि।।

हे रावण जिसके बल के लवहेस मात्र पर तूने चराचर को जीत लिया है और जिसकी प्रिय भार्या सीता का तूने हरण किया है वही मेरे स्वामी श्रीराम हैं जिनके बल पर मैंने तेरा वन उजाड़ा है। अरे रावण तेरी शठता तो इसी से प्रमाणित होती है कि वार-बार तू भगवान श्रीराम के हाथ पराजित होता है और फिर भी निर्लज्ज की भाँति अपने को सर्वश्रेष्ठ वीर मानता है।

अरे रावण ! तू क्या भूल गया है कि कुछ दिन पहले तू जनकपुरी में माता जानकी की स्वयंवर—सभा में गया था और वहाँ भगवान शिव के धनुष को तू उठा भी न सका था किन्तु —

हर कोदंड कठिन तेहि भंजा। तेहि समेत न पदल मद गंजा।।

भगवान् श्रीराम ने उसी कठिन भारी धनुष को सहज में उठाकर ऐसे तोड़ दिया जैसे कोई पुराना सड़ा हुआ धनुष तोड़ दे और उसी से नृप समाज का अहंकार भंग कर दिया। और फिर खर-दूषण त्रिसरा एवं बालि क्या तुझसे कम बलशाली थे? उन्हें भी तो श्रीराम ने मार डाला—

खर-दूषण त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित वलसाली।।

और हे रावण ! बार-बार जो अपने मुख से अपनी वीरता का बखान कर रहा है, "क्या मेरे बारे में नहीं सुना? तो सुन मैंने क्या सुना है-

जानेउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई।।
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि वचन विहसि विहरावा।।

रावण ने हनुमान जी की बात हँस कर टाल दी। फिर रावण ने पूछा फल खाए, पेड़ उजाड़े किन्तु राक्षसों को क्यों मारा यह भी क्या तेरा बन्दर का स्वभाव है। रावण ऐसी बातें करने लगा मानों वह न्यायाधीश है।

मारे निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ तोहि न प्राण कड़ वाधा।।

तो कानून की बात कर रहे हैं रावण ! अच्छा तो हम उत्तर देते हैं—

सबके द्रेह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी।।
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे।।

हुजूर जरा विचार करें। सब ही को अपनी देह बड़ी प्यारी होती है अर्थात प्राणें का भय किसकों नहीं। और प्राण रक्षा के लिए हुजूर किसी को मारना तो अपराध नहीं हो सकता। और फिर ये तो कुमारगगामी थे जिन्हें दण्ड पाने का अधिकर है देने का नहीं। और फिर वे कुमारग गामी थे यदि वन उजाड़ने पर वे मुझे मारे तो मार्ग छोड़ कर कुमार्ग पर जाने वाले भी तो शान्ति का वन उजाड़कर अशान्ति का रास्ता बनाना चाहते हैं। उनका भी उतना ही दोष है। फिर मैंने तो अपनी तरफ से आक्रमण भी नहीं किया, मारने भी नहीं गया। जिसने मुझे मारा उसे ही केवल आत्म रक्षा के लिए मैंने मारा है।

इधर स्वामी विवेकानन्द जी भौतिकवादी रावण को कहते

हैं-हे भौतिकवाद ! तू पूछता है किसके बल पर मैंने ऐसा किया तो सुन, तू सोचता है तू राजा है पर तू तो दास है तू अपनी इन्द्रियों का दास है। विषयों की ओर दौड़ता है। विषयों का दास है। तेरा मन बुद्धि सब विषयाधीन हैं। और मैं श्रीरामकृष्ण का दास हूँ जिनकी शक्ति से तू भोगों को भोगता है, जिनकी शक्ति से तेरी बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ कार्य करती हैं।

हे भौतिकवादी रावण ! कोई धन ऐश्वर्य से सम्माननीय नहीं होता, आध्यात्मिक सम्पदा प्राप्त कर ही होता है।

हे भौतिकवाद रूपी रावण! तेरी यह सोने की लंका और तेरी समस्त शक्तियाँ अर्थात् विज्ञान प्रयुक्ति आदि तेरी शक्तियाँ और उसके द्वारा प्राप्त समृद्धि, सुख और भोग विलासिता सभी अचल हो सकती हैं, तुझे सुख और आनन्द तथा शान्ति दे सकती हैं, यदि तू अध्यात्मवाद रूपी श्रीरामकृष्ण की शरण ले उसकी अधीनता स्वीकार करे। उसे अपने जीवन का आधार बना ले।

स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था,

"अगले पचास वर्ष में ही यह यूरोप जो आज समस्त भौतिक शक्ति के विकास का केन्द्र बना बैठा है, यदि अपनी स्थिति को परिवर्तित करने की चेष्टा नहीं करता, अपना आधार नहीं बदलता तथा आध्यात्मिकता को ही जीवनाधार नहीं बना लेता है तो बरबाद हो जाएगा, धूल में मिल जाएगा। यदि यूरोप को कोई शक्ति बचा सकती है तो वह है केवल उपनिषदों का धर्म।" यह तो श्रीरामकृष्ण की शक्ति है। जिसके बल पर भौतिकवाद जीवित रहता है। वे तो निर्गुण निराकार परब्रह्म एकमेवाद्वितीयम् हैं। उन्हीं की त्रिगुणात्मिकता शक्ति ईश्वर कहलाती है और उसी से सारी सृष्टि होती है। इस सारे विश्व ब्रह्माण्ड में उन्हें छोड़कर और कुछ भी नहीं है। वे ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म और स्थूल से स्थूलतर वस्तु बने हैं। अतः जो कुछ भी जगत में है वह तो उन्हीं की शक्ति से चल रहा है।

आधुनिक जगत में भौतिकवादी दृष्टिकोण से बड़ा या सम्माननीय उसको मानते हैं जो या तो धनवान हो, उपाधियों वाला हो, पदवीवाला हो, सुन्दरता में श्रेष्ठ हो, सिनेमा कलाकार हो, माफिया हो इत्यादि। श्रीरामकृष्ण ने अपने जीवन में यह दिखा दिया कि एक आधी धोती पहनने वाला, अनपढ़, पदवीहीन, उपाधिहीन एक साधारण ब्राह्मण आध्यात्मिक सम्पदा सम्पन्न होकर जगत पूजनीय और वन्दनीय हो सकता है।

अतः आध्यात्मिक शक्ति सब शक्तियों से परे हैं और उसी की शक्ति पर भौतिक समृद्धि भी बलवान होती है, शोभा देती है।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि एक के बाद जितने भी शून्य लागए, जाएँ मूल्य बढ़ता जाता है। परन्तु उस एक को हटा दें तो सब शून्य हो जाता है।

जैसे रावण से हनुमान जी ने कहा-

प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गए सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि।।
रामचरन पंकज उर धरहू।
लंका अचल राजु तुम्ह करहू।।

खर के शत्रु श्रीरघुनाथ जी शरणागतों के रक्षक, दया के समुद्र हैं। उनकी शरण में जाने से वे सब अपराध क्षमाकर शरण में रख लेंगे। यदि तुम लंका का राज्य अचल करना चाहते हो तो श्रीराम के चरणों को हृदय में धारण करो।

रावण ने कहा, "तो ठीक ही हुआ रे बन्दर ! ले अब अपने किए का दण्ड ! तू मेरे पुत्र द्वारा बाँध लिया गया है।" हनुमानजी महाराज फिर मुस्कराए और कहा, "अभी भी हे रावण तूने उल्टा ही समझा। अरे दंड तो मुझे नहीं मिला तुझे मिलनेवाला है। मेरा तो बँधकर काम ही बन गया।"

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।।

हे रावण तू यथार्थतः देखना सीख ले। ये तो तेरा अभिमान और भ्रम है कि तू सब कुछ उल्टा ही देखता है। ज्ञान की एक मात्र दृष्टि स्पष्ट कर देता है और किसी भी वस्तु का यथार्थ ज्ञान कराता है। और ज्ञान क्या है?

रामहि केवल प्रेम पियारा। जान लेहु जो जाननिहारा।।

इसलिए, हे रावण ! तू मेरी मान तेरा कल्याण होगा।

विनती करउँ जोरि कर रावण। सुनहु मान तजि मोर सिखावन।।
देखहु तुम्ह निज कुलहि विचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी।।

दण्ड से बचने का यही उपाय है। क्योंकि हे रावण! सारा जगत काल से डरता है। किन्तु श्रीराम तो काल के भी काल हैं और जो देवताओं असुरों चराचर सभी प्राणियों को निगल जाते हैं, उनसे काल भी डरता है। अतः हे रावण तू अभी भी मेरी बात

मान ले।

नारी बदरू कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै।।
प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं सब अपराध बिसारि।।

किन्तु हे रावण यदि तूने ऐसा नहीं किया और राम विमुख रहकर यदि तूने उनसे वैर किया तो मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि राम विमुख को कोई भी नहीं बचा सकता।

शंकर सहस विष्णु अज तोही। सकहिं न राखि रामकर द्रोही।।

हनुमान जी ने तो हित की बात ही समझाई थी किन्तु रावण ने अभिमान से हँसकर कहा, अब हमको ये बंदर बड़ा ज्ञानी गुरू मिला है। और पवनपुत्र को ललकार कर कहा।

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही।।
उलटा होइहि कह अनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना।।

रावण खिसिया गया और क्रोधित होकर कहने लगा। ठहर रे वानर, तुझे मृत्यु के मुख में पहुँचा दूँ तब ही तू मानेगा। और वह चिल्लाया कि इस मूर्ख के प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते। यह सुनकर ही राक्षसगण पवनपुत्र को मारने के लिए दौड़े। तबभी विभीषण जी ने रावण को समझाया कि हे राजन् दूत को मारना नहीं चाहिए। यह नीति के विरूद्ध है उसे कोई दूसरा दण्ड देना चाहिए। रावण ने सोच समझकर यह आदेश दिया कि बन्दर की ममता उसकी पूँछ पर होती है अतः तेल में भीगी टाट पूँछ में बाँधकर आग लगा दो।

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लह आइहि।।
जिन्ह कै कीन्हेसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभु ताई।।

हनुमान जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रभु तुम्हारी लीला बड़ी ही अपार है। मुझे तो आप कुछ करने ही नहीं देते सब अपने आप ही कर लेते हैं। आपको लंका जलानी ही है। त्रिजटा को स्वप्न दिखाकर मुझे अपना आदेश उसके मुख से सुनाया। मैं सोच ही रहा था कि यह कैसे घटेगा कि रावण के मुख से ही ऐसा आदेश दिया कि मुझे आग भी न खोजनी पड़े।

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना।।

वे मन ही मन कहने लगे। अरे रावण ! अपने स्वामी को तो मैं लेकर तेरी लंका में अवश्य ही आऊँगा किन्तु फिर तू उल्टा ही समझा। जलकर भस्म मेरी पूँछ नहीं होगी बल्कि तेरी लंका ही होगी। मैं तो अपनी पूँछ को बढ़ा भी सकता हूँ सिकोड़ भी सकता हूँ। क्योंकि मैं श्रीराम का बंदर हूँ। पर हे रावण ! तू काम का बंदर है। अतः तेरी ममता रूपी पूँछ लंका को न तो बढ़ा सकती है न सिकोड़ ही सकती है। ऐसा कहकर हनुमान जी ने अपनी पूँछ बढ़ानी शुरू की।

हनुमान जी फिर मुसकुराए

बचन सुनत कपि मन मुसकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना।।

अरे रावण अपने स्वामी को तो मैं लेकर तेरी लंका में अवश्य आऊँगा और तू उनकी प्रभुताई को अवश्य देखेगा पर फिर तूने उलटा समझा। मेरी पूँछ नहीं तू अपनी पूँछ लंका को ही जलाने जा रहा है। तूने कहा मेरी ममता पूँछ पर है तो मैं तो अपनी ममता को बढ़ा सकता हूँ और सिकोड़ भी सकता हूँ पर तू अपनी ममता (लंकारूपी पूँछ) को बढ़ा सकता है परन्तु सिकोड़ नहीं सकता। वही जलेगी। ऐसा कहकर हनुमान जी ने अपनी पूँछ बढ़ा ली।

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला।।
बाजहि ढोल देहि सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी।।
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता।।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी।।

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले महरूत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास।।

सारी लंका जल गई। जली नहीं अशोकवाटिका, जला नहीं विभीषण का महल और जले नहीं अग्नि के सृष्टा श्रीराम के दूत हनुमान-

पूँछ हीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लह आइहि।।
जिनके कीन्हेसि बहुत बड़ाई। देखहुँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई।।
बचन सुनत कपि मन मुसकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना।।

जिस प्रकार लंका जलाने के लिए न तो हनुमान जी महाराज को टाट और तेल की व्यवस्था करनी पड़ी और न अग्नि की चिंगारी लगाने की। सारी व्यवस्था तो लंका नरेश रावण ने ही कर दी थी और लंका के राजदरबारियों ने सारा कार्य सम्पन्न कर दिया। फिर हनुमान जी महाराज ने सिर्फ एक भवन से दूसरे भवन

पर छलाँग लगाई कि लंका अपने आप ही जल गयी। उसी प्रकार अमेरिका के शिकागो धर्म-महासम्मेलन की व्यवस्था तो भौतिकवादी अमेरिका ने ही कर दी थी। शिल्प प्रसाद और भाषण के लिए मंच आदि सभी की व्यवस्था वहीं से हुई। स्वामी विवेकान्द तो अकेले, खाली हाथ उस मंच पर जा पहुँचे। और जैसे ही उन्होंने बड़े ही स्वाभाविक तरीके से कहा, "मेरे अमेरिकावासी भाइयो और बहनो कि दो मिनट तक लगातार करतल ध्वनि गूँजती रही और दूसरे दिन स्वामी विवेकानन्द की ख्याति सारी अमेरिका में आग की तरह फैल गई।

श्रीराम और राक्षसराज रावण के युद्ध में महावीर बजरंग बली की जो भूमिका रही हैं इस युग में श्रीरामकृष्ण देव के युग प्रयोजन में स्वामी विवेकानन्द की वही भूमिका रही है। श्रीराम आध्यात्मिकता की जीती—जागती मूर्ति थे तो राक्षसराज रावण भौतिकवाद की। अपने बाहुबल से राक्षसराज रावण ने सभी शक्तियों को अपने वश में कर लिया था सूर्य, चन्द्र, पवन, वरूण इत्यादि सभी देवता रावण के कारागार में बन्द थे। उसने सभी प्रकार के धार्मिक और पवित्र अनुष्ठान जैसे यज्ञादि ध्वसं कराने शुरू कर दिए थे। ऋषियों और मुनियों को खा-खाकर इस पृथ्वी पर उनकी हड्डियों के ढेर लगा दिए थे। माता जानकी को बन्दिनी बनाकर अशोक वाटिका में रख दिया था और उन्हें अपने राज वैभव, धन और पदवी का प्रलोभन दिखा कर राम विस्मृता बनाना चाहता था। और दूसरी ओर श्रीराम आध्यात्मिकता के ज्वलंत उदाहरण-त्याग, वैराग्य, वरूणा, मैत्री, प्रेम, की ज्वलंत मूर्ति धर्म की रक्षा और मानव कल्याण के लिए वे इस पृथ्वी पर अवतरित हुए थे।

अतः माता जानकी की भगवान राम आह्लादिनी (आध्यात्मिक) शक्ति हैं जिन्हें रावण चुराकर ले गया और उन्हें भौतिकवाद का अवलम्बन करने के लिए वह प्रयास कर रहा था। उसी माता जानकी को श्रीराम ने रावण से छुड़ाकर पुनः प्रतिष्ठित किया था।

स्वामी विवेकानन्द की भाषा में पुनः ऐसी ही परिस्थिति आई थी। श्रीरामकृष्ण के आगमन की सूचना देते हुए उन्होंने कहा था.आज, जब कि भौतिकवाद अपनी शक्ति तथा कीर्ति के शिखर पर है तथा जब यह सम्भव हो रहा है कि मनुष्य जड़ वस्तुओं पर अधिकाधिक अवलम्बित रहने से अपनी दैवी प्रकृति भूलकर केवल धनोपार्जन का एक यंत्र मात्र बन जाय, समायोजन की बड़ी आवश्यकता है। ऐसे अवसर के लिए ईश्वरी वाणी हो चुकी है और ऐसी दैवी शक्ति का आगमन हो रहा है जो बढ़ते हुए भौतिकवाद के मेघों को तितर-बितर कर देगी। इस शक्ति के खेल का आरम्भ हो चुका है और यह शक्ति ही मानव जाति में उसके वास्तविक स्वरूप की स्मृति का संचार एक बार फिर कर देगी।

श्रीरामकृष्ण देव का आगमन इसी भौतिकवाद के दैत्यराज को मारने के लिए हुआ था और स्वामी विवेकानन्द उसी कार्य में श्रीरामकृष्ण की सहायता के लिए अवतरित हुए थे। श्रीरामकृष्ण देव ने कड़ी तपस्याओं द्वारा अपने जीवन की तीन चौथाई समय की साधना से जो आध्यात्मिक संपदा अर्जन की थी उसी के द्वारा उन्हें भौतिकवाद का विनाशकर पृथ्वीवासियों को भौतिकवाद के अत्याचारों से बचाना था। उसी शक्ति के बल पर स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने सिंह विक्रम से दिगदिगान्तर में विजय प्राप्त की थी।

अमृत वाणी

तुम्हारे भावों में किसी प्रकार का छल-कपट न हो। दिल के सच्चे, निष्कपट बनो, मन-मुख एक करो। तुम अवश्य सफल हो जाओगे। सच्चे और सरल हृदय से प्रार्थना करो, वे तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे।

-श्रीरामकृष्ण

ध्यान में मन क्यों नहीं लगता ?

- स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पोरबन्दर

'स्वामी जी, एक प्राइवेट बात कहनी है।

'कहो, क्या समस्या है?'

'जब ध्यान करने बैठता हूँ, तब ध्यान में मन नहीं लगता। मन भटकने लगता है। अनेक उल्टे-सीधे विचार न जाने कहाँ से ध्यान के समय मन में आने लगते हैं ऐसा क्यों होता है?'

'भाई, यह अकेले तुम्हारा ही प्रश्न नहीं है। यह तो ओपन सिक्रेट है। सभी यह प्राइवेट समस्या मुझे बता जाते है।'

'पर कितने ही ध्यान शिविरों में तीन घंटे में ही समाधि का अनुभव करवा देते हैं। पैंतीस डालर में 'इन्सटैंट समाधि' की प्राप्ति हो जाती है। ऐसे विज्ञापन आते हैं।आजकल इन्सटैंट का जमाना है। 'इन्सटैंट काफी, इन्सटैंट फूड, ऐसे ही 'इन्सटैंट समाधि'। पर यह अनेक वर्षों की कठिन तपस्या से प्राप्ति होती है, समाधि कोई क्या तीन घंटे में करवा सकता है? यह क्या इतनी सहज और सरल है कि आँख बन्द की और समाधि प्राप्त हो जाती है? समाधि तो राजयोग का आठवां सोपान है। पहले सात पग सिद्ध होने के बाद आठवां सोपान आता है। इसलिए पहले सात सोपान पूरे करने पड़ते हैं, फिर आठवें सोपान पर पहुँच सकते हो। इसके बदले सात पग चले बिना, सिद्ध किए बिना सीधे आठवें सोपान पर छलांग लगाओं, तो यह नहीं हो सकता। ये आठ सोपान हैं, 'यम, नियम, असन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। निरन्तर साधना द्वारा प्रथम छः सोपान सिद्ध होने के पश्चात् ध्यान सिद्ध होता है। दो-चार दिन थोड़े समय ध्यान में बैठने से क्या तत्काल मन की चंचलतादूर हो जाती है? इसके लिए-तो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा सिद्ध करनी पड़ती है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को यम कहते हैं। ये यम मन को और चित्त को शुद्ध करते हैं। मन, वचन और कर्म से किसी को दुःख न हो, उसका नाम अहिंसा है। सर्व वस्तुएँ सत्य में ही रहती है और सत्य से ही प्राप्त होती हैं। वास्तव में वह कहने लायक सत्य ही हैं किसी की वस्तु चोरी या जोर जबरदस्ती ली जाए उसे अस्तेय कहते हैं। मन, वचन और कर्म से हमेशा और हर स्थिति में इन्द्रिय संयम का पालन करना ब्रह्मचर्य है। चाहे कैसी भी विपत्ति आए तो भी किसी से भी दान न लेना वह अपरिग्रह है। इन यम के पाँच व्रतों के साथ-साथ नियम के दूसरे पाँच आचार व्रतों का पालन करने से ध्यान जल्दी सिद्ध होता है। ये पाँच व्रत है-'तप, स्वाध्याय, संतोष, शौच और ईश्वर प्रणिधान' इन आचार व्रतों को नियम कहते हैं। तीसरा सोपान है, आसन। इसमें ध्यान में, या ईश्वर की भक्ति में, या उपासना में बैठते समय छाती, कंधे और सिर को सीधा रखना चाहिए। बाद में आता है, प्राणायाम। प्राण अर्थात् शरीर की जीवन शक्ति, उसे नियंत्रण में रखना प्राणायाम है। अपनी बहिर्मुख ज्ञानेन्द्रियों को इच्छा शक्ति के नियम से पालन करना प्रत्याहार है। मन को मस्तक के मध्य में या हृदय कमल में स्थिर करना यह है धारणा। मन एक ही प्रत्यय पर एकाग्र रहे तो वह है ध्यान और जब प्रत्यय पर न रहे और मन की सभी वृत्तियाँ एकाकार हो जाएँ वह है समाधि। प्रत्यय अर्थात् जिसका ध्यान करते हो, वह पदार्थ, वस्तु या ईश्वर। किसी भी तरह के विक्षेप बिना एक प्रत्यय पर बारह सेकैंड तक ध्यान रहे तो उसे धारण कहते हैं। यदि १२x१२=१४४ सेकैंड ध्यान रहे तो उसे ध्यान कहते हैं और यदि १२x१२x१२=१७२८ सेकैंड तक ध्यान रहे तो वह समाधि कहलाती है। समाधि के संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात दो प्रकार हैं। इस तरह ध्यान में तुरन्त मन लग जाना तो स्वामी विवेकानन्द जैसे किसी जन्म से ही ध्यान—सिद्ध के लिए संभव हो सकता है। सभी के लिए नहीं।

तो अब क्या करें? क्या ध्यान करना छोड़ दें? नहीं, बिल्कुल नहीं। आरम्भ में ध्यान करना कठिन हैं पर अभ्यास से साध्य बन जाता है। इसके लिए निरंतर अभ्यास करना जरूरी है।

पातंजल योग सूत्र में कहा है:- 'स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः।'

लम्बे समय तक आदर पूर्वक निरन्तर पुष्कल अभ्यास करने से यह दृढ़ बनता है।

अर्जुन को भी मन को काबू में करना बहुत मुश्किल लगता था। उन्होंने श्री कृष्ण से कहा "भगवन्, आपने मुझे योग

की बात तो कही पर मन की चंचलता के कारण मुझे ऐसा नहीं लगता कि योग टिक सकता है, सो बाद में वे कहते हैं कि-

"चंचल हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलबद्दृढम्।
तस्याहं निग्रह मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।"

'हे कृष्ण, मन अति चंचल, बलवान और हठीला है, अतः इसे रोकना मुझे ऐसा लगता है, जैसे कि वायु को रोकना दुष्कर होता है।' अर्जुन की यह बात सुनकर श्री कृष्ण भगवान उसका तिरस्कार नहीं करते, जैसे द्वितीय अध्याय में कहा है कि, ऐसे कायर मत बन, यह तुझे शोभा नहीं देता। हृदय की तुच्छ दुर्बलताओं को छोड़ कर खड़ा हो और जा युद्ध कर।' 'तुम्हारा मन क्यों एकाग्र नहीं होता। यह तुम्हे शोभा नहीं देता।' ऐसा कुछ कहने के वदले वह उसे कहते हैं कि, 'हे पार्थ, तेरी बात सच्ची है। चंचल मन को वश में करना बहुत मुश्किल है।' भगवान स्वयं भी मन की चंचल प्रकृत्ति को स्वीकार करते हैं और फिर उसे वश में करने का मार्ग भी वताते हैं। वह कहते है -

असंशय महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कैन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

हे महाबाहो, यह मन चंचल है, वश में करना कठिन है। इसमें कोई शंका नहीं। परन्तु हे कौंतेय, अभ्यास और वैराग्य द्वारा यह जरूर वश में आ जाता है।

इस प्रकार दीर्घकाल तक ध्यान का निरन्तर अभ्यास करने से मन धीरे-धीरे एकाग्र होने लगता है। मन की प्रकृत्ति ब्रह्माजी ने ऐसी बनाई है कि वह बाहर के पदार्थों पर जाती है। अब इसकी प्रकृति को बदलना तो ऐसे है, जैसे नदी के प्रवाह में तैरना। जिनकी प्रकृति अंतर्मुखी होती है, उनके लिए ध्यान करना सरल है। पर यह तो सिद्धयोगी या अवतारी पुरुष ही कर सकते हैं। श्रीरामकृष्ण देव का मन तो इतना अधिक अंतर्मुखी था कि वह वार-वार समाधि में डूब जाते थे। इस मन को बाहर लाने के लिए वे कई वार कहते थे कि, 'मैं पानी पीऊँगा, मिठाई खाऊँगा। यह कह कर, वह अपने मन को बाहर के पदार्थों पर केन्द्रित करते ताकि हर समय समाधि में ही न चला जाए। अतिचेतन अवस्था में से साधारण भूमिका में मन को लाने के लिए उन्हें ऐसा करना पड़ता था। वे ऐसा बोलते थे, उस समय उन्हें कोई पानी-पीने या मिठाई खाने की कोई इच्छा नहीं होती थी। पर अंतर्मुखी मन को बाहर लाने के लिए उन्हें ऐसा कहना पड़ता था।

स्वामी विवेकानन्द भी बचपन से ही ध्यान करने में सिद्ध थे। जब वह छोटे बालक थे, उस समय सभी उन्हें 'बिले' कहते, तब वह अपने मित्रों के साथ ध्यान का ही खेल खलते थे। एक वार सभी इस प्रकार ध्यान कर रहे थे, तभी वहाँ साँप आ गया, डर कर सभी भाग गए, पर बिले का ध्यान नहीं छूटा। और वह तो वहीं पर निश्चल बैठे रहे। यह है मन की अविचल एकाग्रता। बचपन से ही उनका ध्यान सहज था। अमेरिका में ट्राम में बैठे-बैठे वे ध्यानस्थ हो जाते। जब अंतिम स्टेशन आता तो कंडक्टर उन्हें ध्यान में से जगा कर उतरने के लिए कहता। तब उन्हें पता चलता कि 'उनके उतरने का स्टेशन तो कब का चला गया है।' बाजार में शिकागो के मेले में भारी शोरगुल के बीच भी उनका ध्यान चालू रहता।

ऐसा ही ध्यान उनके गुरु भाई स्वामी सारदानन्द जी का भी था। वे श्रीरामकृष्ण मिशन के प्रथम जनरल सैक्रेटरी थे। उस समय वह उद्बोधन में रहते थे। उद्बोधन में ऊपर की मंजिल पर श्रीमाँ सारदा देवी रहती थीं। श्रीमाँ के साथ गोलापमाँ वगैरह भी रहती थीं। गोलापमाँ का स्वभाव बहुत कर्कश था। वे जोर-जोर से बातें करती रहतीं। श्रीमाँ के साथ उनकी भतीजी नलिनी और राधू भी रहती थी। श्रीमाँ की छोटी भाभी सुरवाला जो पागल हो गई थी, वह भी वहाँ रहती थी, इस सब शोर-गुल के बीच में वे रहती थीं। नीचे श्रीमाँ के दर्शन के लिए भेजना, सारे कार्यो के अलावा श्रीरामकृष्ण मठ-मिशन के जेनरल सेक्रेटरी के नाते अनेक महत्त्व के कार्य करवाना इन सब के बीच में, उद्बोधन की नीचे की एक छोटी सी कोठरी में अपने भारी शरीर के साथ स्वामी सारदानन्दजी ने श्रीरामकृष्ण-लीला प्रसंग का अमर ग्रंथ लिखा। कैसी एकाग्रता और तन्मयता थी !

उन्हें इस प्रकार लिखते देख एक भक्त ने उनसे पूछा 'शरत् महाराज, ऊपर तो मछली बाजार से भी मानो बड़ा बाजार है। इतना अधिक शोर है। क्या आपको लिखने में कोई परेशानी नहीं होती?'

उन्होंने उत्तर दिया, 'देखो भाई मैंने अपने मन को समझा दिया है कि मतलब की बात ही सुनो। दूसरी कोई बात सुनो ही नही।'

मन के ऊपर सम्पूर्ण नियंत्रण हो तो, यह स्थिति प्राप्त हो जाती है। ऐसे मनुष्यों के लिए तो स्थान का महत्त्व रहता ही नहीं। यह पूर्णता की स्थिति है। बाद में तो चाहे युद्ध भूमि हो, या बाजार, या जंगल हो या एकांत हो। उसके लिए तो फिर स्थल का कोई महत्त्व रहता ही नहीं। पर सामान्य मनुष्यों के लिए ऐसा करना बहुत मुश्किल है। उनको तो जरा भी आवाज हो तो ध्यान भंग हो जाता है। बाद में ध्यान लगता ही नहीं। इन्द्रियाँ आँख, कान, नाक –ये सभी विषयों की तरफ भागती हैं। पर इसमें इन्द्रियों का कोई दोष नहीं। ब्रह्माजी ने इन्द्रियाँ बनाते समय उनका मुँह बाहर की ओर रख दिया है। इसलिए वह बाहर की ओर ही देखती हैं। कठोपनिषद् में इसका वर्णन करते हुए कहा है -

पराञ्चिखानि व्यत णत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावत चक्षुः अमृतत्वमिच्छन्।।

ब्रह्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी किया है। इसलिए मनुष्य इन्द्रियों के द्वारा बाहर की वस्तुओं को ही देखता है। अंतर आत्मा को नहीं। कोई धीर-विवेकी मानव ही अमृतत्व पाने की इच्छा से चक्षु वगैरह इन्द्रियों को बाह्य विषयों में से निकाल कर अंतरात्मा को निरखता है।

इन्द्रियों का स्वभाव बहिर्मुखी होने से अंतर में एकाग्रता नहीं आती परन्तु कोई धीर पुरुष अमृतत्त्व की इच्छा से बहिर्मुखी मन को निरन्तर अभ्यास द्वारा अंतर्मुखी करता है और ईश्वर का साक्षात्कार करता है। वह आत्मा के साथ एकरूप हो जाता है। बाद में उसे शरीरबोध नहीं रहता। और वह मृत्यु के ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है। परन्तु इसके लिए बाहर दौड़ते हुए मन को बलपूर्वक, यत्न पूर्वक, अंतर में लगाना पड़ता है। इसमें सतत लगे रहना पड़ता है। यह किसी चमत्कार की तरह एक ही दिन में नहीं हो जाता। इस संदर्भ में श्रीरामकृष्ण देव खानदानी किसान की बात कहते हैं। दो प्रकार के किसान होते हैं-एक खानदानी, दूसरा साधारण किसान। साधारण किसान खेती में होता लाभ देखकर ललचता है। सबसिडी मिलेगी, जमीन मेहसूल में राहत मिलेगी, वर्ष के अंत में खूब लाभ मिलेगा, सोचकर खेती करता है. पर अगर एक वर्ष आकाल पड़े, दूसरे वर्ष भी लाभ न हो तो वह साधारण किसान खेती छोड़ देता है कि इसमें लाभ नहीं है। पर दूसरा तो दो वर्ष क्या पाँच वर्ष तक भी कुछ न मिले तो खेती करना नहीं छोड़ता है। वह गाँव का असली किसान है और खानदानी किसान है, वह खेती में लगा ही रहता है। इसी प्रकार साधक भी दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के साधकों को तुरन्त फल चाहिए। धैर्यपूर्वक परिश्रम नहीं करना चाहते। थोड़ी सी मेहनत से ही वे थक जाते हैं। 'यह मेरा काम नहीं।' कह कर मन को एकाग्र करने का काम छोड़ देते हैं। दूसरे प्रकार के साधक तो सच्चे साधक हैं। वे कहते हैं कि 'ध्यान लगना ही चाहिए, भले ही आज न लगे, पर कल तो जरूर लग जाएगा।' यह मानकर प्रतिदिन प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन प्रयत्न करने से उनका मन तैयार हो जाता है। अन्त में उन्हें ध्यान लगाने में सफलता मिल जाती है। साधना में धैर्यपूर्वक प्रयत्न करने से सफलता अवश्य मिलती है। धैर्यपूर्वक प्रयत्न करने की भावना द्वारा किस प्रकार ईश्वर साक्षात्कार होता है, इसकी कहानी स्वामी विवेकानन्द ने कही है। एक बार नारदमुनि वन में से जा रहे थे। तब उन्होंने एक मनुष्य को देखा। वह इतने लम्बे समय से ध्यान कर रहा था कि उसके शरीर के आसपास दीमक ने अपने घर बना लिए थे और उनका ढेर लग गया था। उसने नारद से पूछा 'मुनि किस तरफ जा रहे हो?'

'वैकुण्ठ में जा रहा हूँ।'

'तब तो तुम भगवान को मिलोगे। तो तुम भगवान से पूछना कि मुझे ईश्वर का साक्षात्कार कब होगा?'

'अच्छा जरूर पूछूँगा।' बाद में नारद जी आगे चल पड़े तो उन्होंने एक दूसरा मनुष्य देखा। वह भी भगवान का भजन कर रहा था। उसने भी नारद जी से पूछा कि कहाँ जा रहे हो तो नारद जी ने कहा वैकुण्ठ में भगवान के पास जा रहा हूँ। तब उसने कहा 'तुम भगवान से पूछना कि मुझे भगवान के दर्शन कब होंगे?'.

काफी समय के बाद नारद जी वापस आए तो पहले जिस मनुष्य को दीमक लगे थे उसने पूछा कि 'भगवान ने मेरे लिए क्या कहा?'

'भगवान ने कहा है कि चार जन्म के बाद तुझे ईश्वर का साक्षात्कार होगा।' यह सुन कर तो वह मनुष्य रोने लगा कि 'अरे, मैंने इतना अधिक तप किया, मेरे आसपास दीमक भी लग गई तब तक मैंने ध्यान किया तो भी इस जन्म में मुझे ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होगा? अभी ऐसे चार-चार जन्म तक मुझे तप करना पड़ेगा? यह सोच कर वह निराश हो गया। नारद जी वहाँ से आगे चले तो

दूसरे मनुष्य के पास पहुँचे। उसने भी पूछा! 'तुमने मेरे बारे में भगवान से पूछा?'

'हाँ, उन्होंने कहा कि सामने जो पेड़ है, उसके ऊपर जितने पत्ते हैं, उतने जन्म के पश्चात् तुम्हें ईश्वर का साक्षात्कार होगा।'

'क्या भगवान ने अपने मुख से कहा है कि मुझे ईश्वर का साक्षात्कार होगा? सच-भले ही मुझे इतने जन्म लेने पड़ें मैं, तैयार हूँ. पर मुझे भगवान तो मिलेंगे न ! यह कह कर वह गाने व नाचने लगा। 'तभी आकाशवाणी हुई, "वत्स तुझे अभी ईश्वर का साक्षात्कार होगा" यह उसके अटूट धैर्य का फल था। वह इमली के पेड़ के पत्तों जितने जन्म तक साधना करने को तैयार था। वह निराश नहीं था। पहले वाला मनुष्य चार जन्म को ही बहुत मान रहा था। इसलिए उसके लिए ईश्वर बहुत दूर चला गया था। जबकि दूसरे मनुष्य की दीर्घकाल तक साधना करने की तैयारी ने उसे तत्काल ईश्वर से साक्षात्कार करवा दिया। इस प्रकार लम्बे समय तक धैर्य पूर्वक साधना करने की तत्परता हो तो, परमपद की प्राप्ति अवश्य होती है।

मन को जब ध्यान में एकाग्र करने का वह अभ्यास करने लगता है, तब एक दूसरा प्रश्न मन में उठता है कि जब ऐसा अभ्यास शुरू नहीं किया था, तब तो मन बराबर चलता रहता था, पर जब से अभ्यास शुरू किया और ध्यान में बैठा तो अनेक प्रकार के उल्टे-सीधे और बुरे विचार आने शुरू हो जाते हैं। अधिकतर सभी के साथ ऐसा होता है। तो ऐसा क्यों होता है? इसका कारण यह है कि हमारा मन दो भागों में बँटा है-एक तो बाह्य मन या चेतन मन दूसरा अचेतन मन। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी Conscious mind और Unconscious mind इन दो प्रकार के मन को मानते हैं। हमारा चेतन मन तो १०% ही है। बाकी का ९०% मन यह अचेतन मन है। जिसे हम जानते नहीं। चेतन मन का हम बहुत ही थोड़ा हिस्सा जानते हैं। अचेतन मन में तो जन्मों के संस्कार पड़े होते हैं। ध्यान द्वारा इन संस्कारों का, अचेतन मन से चेतन मन में आना शुरू हो जाता है। समुद्र मंथन में भी पहले जहर निकला, फिर सबसे बाद में अमृत निकला। ऐसे ही यहाँ होता है। ध्यान में बैठते हुए शुरू में जिन विचारों की कभी कल्पना भी नहीं की ऐसे विचारों का आक्रमण मन में होता है। और यह आक्रमण होता रहता है। तब साधक को ऐसा लगता है कि कोई भूत-प्रेत हमला कर रहा है। बुद्ध भगवान ने भी जब ध्यान शुरू किया तो उन्हें भी मार की सारी सेना का सामना करना पड़ा। यह मार दूसरा कोई नहीं पूर्वजन्म के संस्कारों का घनीभूत रूप था। ध्यान शुरू करते ही अचेतन मन में से अशुद्धि बाहर आती है। इसलिए यह न समझें कि पहले अच्छे थे, हमें कभी ऐसे विचार नहीं आते थे। पर अब हम खराब हो गए हैं। यह तो चारपाई के नीचे छिपा हुआ चोर बाहर निकला है। लाईट करने से छिपा हुआ चोर बाहर आ जाता है। अब दो रास्ते हैं, एक तो लाईट बंद करके सो जाएँ और मान लें कि चोर नहीं है। पर सोने के बाद चोर को तो अपना काम करना ही है। वह आपको गला दबा कर मार देगा और सामान लूट लेगा। चोर को देखने के बाद कोई भी ठीक प्रकार सो नहीं सकता। अतः एक ही रास्ता है कि धक्का मार कर चोर को दरवाजे से बाहर निकाल दें। ऐसा ही मन के साथ हैं। ध्यान के प्रकाश से अंदर बैठे हुए संस्कार (चोर और राक्षस) बाहर आते हैं। अब इन चोर और राक्षसों को हमें अंदर से बाहर निकालना है। इस विषय में श्रीरामकृष्ण देव के अंतरंग शिष्य स्वामी अद्भुतानन्द जी कहते है; 'भगवान का नाम लेने से, ध्यान करने से गर्मी पैदा होती है और अंदर रहने वाले ये राक्षस गर्मी सहन नहीं कर पाते। फिर वे अचेतन मन में से चेतन मन में आ जाते हैं' बाद में क्या करे? जिस उपाय से वे बाहर आए, उसी उपाय से उन्हें चेतन मन में से निकाल कर बाहर फेंक देना है। अर्थात् ध्यान और भगवान के नाम का जप निरन्तर चालू रखने से ये राक्षस बाहर चले जाते हैं। ध्यान के प्रारम्भ में यदि कुविचार आए तो बिल्कुल घबरांए बिना ध्यान चालू रखना जरूरी है। यदि बीच में छोड़ दे तो ध्यान में कभी भी मन नहीं लगता है। स्वामी विवेकानन्द मन की तुलना बंदर से करते हैं। वे कहते हैं कि मन बंदर की तरह ही चंचल है। बंदर को शराब पिला दो, और उसके बाद उसे बिच्छू डंक मार दे, फिर उस पर भूत सवार हो जाए, तो बंदर एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकता है। मन भी ऐसा ही है। चंचल तो है ही, उस पर इच्छाओं रूपी शराब पिलाई जाए, ईर्ष्या रूपी बिच्छू का डंक लगे और अहंकार रूपी भूत सवार हो जाए, तो बाद में मन ध्यान में कैसे लग सकता है? यह मन किस प्रकार एकाग्र हो?

तो हमें क्या करना चाहिए? इसके लिए भी श्रीरामकृष्णदेव मठ-मिशन के दसवें परमाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज एक उदाहरण द्वारा सरल और सीधा मार्ग बताते हैं। एक युवक ने उन्हें प्रश्न पूछा कि ध्यान में मन नहीं लगता। अनेक प्रकार के बुरे विचार मन में आते हैं, मन बहुत विचलित हो जाता है, महाराज, कोई रास्ता बताएँ।' तब उन्होंने कहा 'मान लो कि, तुम मेरे कमरे में आए। उस समय मैं पुस्तक पढ़ रहा हूँ। तुम मुझे दो-तीन बार बुलाते हो और यदि मैं तन्मयता के कारण उत्तर न दूँ तो तुम क्या करोगे?'

'महाराज मैं वापिस चला जाऊँगा।'

'तो बस यही बात है।'

उस युवक को आश्चर्य हुआ कि उस दिन उसके साथ सवेरे यही हुआ था। वह महाराज के कमरे में गया था, महाराज पुस्तक पढ़ रहे थे। दो-तीन बार उसने महाराज को बुलाया पर उन्होंने सुना ही नहीं तो वह वापस आ गया। इस प्रकार उस युवक को स्पष्ट रूप में समझा दिया कि दुर्वृत्तियों और कुविचारों पर बिलकुल ध्यान न दो। उन्होंने कहा कि, 'यदि तुम उनके सामने लड़ाई झगड़ा करोगे तो वे तो बहुत ही शक्तिशाली हैं, तुम उन पर नियंत्रण नहीं कर पाओगे, वे तुम्हें अपनी पकड़ में ले लेंगे। इसकी बाजाए उनकी ओर ध्यान ही न दो, दो-तीन बार वे तुम्हें परेशान करेंगे बाद में जब तुम उनकी परवाह नहीं करोगे तो वापस चले जाएँगे' यह तो ऐसा है-जैसे तुम पूर्व की ओर चल पड़ो। पश्चिम अपने आप पीछे रह जाना है और दूर हो जाता है। जैसे-जैसे ध्यान का प्रकाश बढ़ता जाता है, और अचेतन मन में से उठते संस्कार इस प्रकाश में धुल जाते हैं, वैसे-वैसे मन सच्चिदानन्द रूप में डूबने लगता है। जैसे दावात में पानी गन्दा हो जाता है और आठ-दस बार धोने के बाद ही पानी से दावात साफ होता है। हम उसे तब तक धोते रहते हैं जब तक साफ पानी, साफ नहीं रहता। ऐसे ही मनरूपी दावात को ध्यान द्वारा मलिन संस्कार को दूर करना होगा। उसके लिए बार-बार प्रयत्न करना पड़ता है। फिर तो बाद में अत्यन्त शुद्ध मन रह जाता है। इस संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द जी कहते है :-

"You must never forget that as the bad thoughts and bad deeds are ready to spring upon you like a tiger, so also there is an inspiring hope that good thoughts and good deeds are ready with a hundreds thousands angels to defend you always and for ever."

'यह कभी मत भूलो कि जैसे बुरे विचार और बुरे कार्य तुम पर शेर की तरह कूदने को तैयार हैं उसी प्रकार यह प्रेरक आशा भी है कि तुम्हारे अच्छे कर्म एवं अच्छे विचार लाखों देव-दूतों की तरह सदैव और अनंतकाल तक तुम्हारी रक्षा करने के लिए तत्पर हैं। हम इन बचनों पर श्रद्धा रखें और खराब विचारों की उपेक्षा करें। नियमित ध्यान का अभ्यास करने से, मन अवश्य एकाग्र होगा।

श्रीमती योगेश धीमान

{गुजराती मासिक पत्रिका
'श्रीरामकृष्ण ज्योत'
जुलाई ९९ से साभार}

अमृत वाणी

तू राधा और कृष्ण को मानो या ना मानो, किन्तु उनके एक दूसरे के प्रति आकर्षण को अवश्य स्वीकार करो। अपने हृदय में भगवान के लिए उसी प्रकार की व्याकुलता लाने का प्रयत्न करो। उन्हें प्राप्त करने के लिए व्याकुलता की आवश्यकता है।

-श्री रामकृष्णदेव

"तत्त्वमसि"

- कुमारी ऋचा रश्मि
छपरा(बिहार)

करीब एक माह पहले की बात है एक वकील साहब के सात वर्षीय पुत्र को स्कूल जाते समय भरे चौराहे से अगवा कर लिया गया। फिरौती चार लाख रूपये की माँग के साथ ही नहीं देने पर जान से मार देने की धमकी भी।

खोज बीन शुरू हुई, पुलिस भी मुस्तैदी से कार्य कर रही थी पर कामयाबी नहीं मिल रही थी। हर दो दिन पर वकील साहब को अपहरणकर्ताओं की धमकी फोन पर अवश्य मिल जाती थी। अचानक एक दिन सुबह-सुबह खबर मिली कि फिरौती नहीं देने की वजह से बच्चे को जान से मार कर लाश वकील साहब के दरवाजे पर फेंक दी गयी है .....सारे शहर में कोहराम मच गया। माँ पागलों की भाँति चीख रही थी, पिता चुप-चाप शिथिल पड़े थे, छोटी बहन घर आने वालों को भौचक्के की तरह देख रही थी। थोड़ी ही देर में पत्रकार आये, पुलिस आयी और एक स्थानीय विधायक महोदय भी उपस्थित हुए। पत्रकार ने खबर छापने के लिये लाश की तस्वीर ली, पुलिस ने शव को पोस्टमार्टम का आदेश दिया और विधायक जी ने सखेद ५ लाख रूपये का चेक देने एवं केस की सी०बी०आई० से जाँच करवाने का आश्वासन भी दिया। केस फाईल में केस दर्ज किया गया और फाईल बंद हुई अगला पन्ना किसी अन्य भयंकर केस दर्ज करने की प्रतीक्षा में था। .....यह तो एक घटना थी जो मेरे जानने में हुई। पर आजकल यह आम बात है। जिंदगी की कोई कीमत ही नहीं है। समझ में नहीं आता यह मौत का ताण्डव कब तक चलता रहेगा। पुलिस कितनों का पोस्टमार्टम करवायेगी और मंत्रिगण कितनों के नाम चेक काटते रहेंगे।

विचार करें कि इसका कारण एवं निदान क्या है? यदि मौका ए वारदात चौराहे के लोगों ने थोड़ी भी सतर्कता दिखायी होती तो शायद इतना बड़ा हादसा नहीं होता। जवाब मिलता है आखिर हम क्या कर सकते थे, अपहरणकर्ताओं के पास तो हथियार थे हमारे पास तो कुछ भी नहीं था, हम निर्बल और असहाय थे। प्रश्न उठता है क्या सबल होने के लिए हथियार सबसे जरूरी है या आपसी एकता और आत्मविश्वास भी कोई चीज है?

एक सबसे जरूरी और आवश्यक चीज आत्मबल और विश्वास तो हम सबके अंदर थोड़ बहुत है, पर हम उसे प्रकट नहीं करते या होने नहीं देते हैं। हमारे पास असीमित ज्ञान भंडार होते हुए भी हम स्वयं को दुर्बल घोषित कर अपराधों के आगे घुटने टेक रहे हैं। हम अपनी दुर्बलता को दूर करने की बजाय उसे छिपाने का प्रयत्न करते हैं।

पानी सर के ऊपर उठ रहा है, हमें अब जागना होगा। इस संदर्भ में स्वामी विवेकानंद जी की एक सिंह वाली कथा बड़ी प्रसिद्ध है-एक सिंहनी जो गार्भिनी थी, भेड़ों के झुण्ड में एक सिंह शावक को जन्म देकर मर गई। भेड़ों ने उस सिंह-शावक का लालन पालन किया। सिंह शावक भी उनसे काफी घुल मिल गया। वह भूल गया कि वह सिंह है। वह भेड़ों के सदृश ही आचरण करता। कुछ दिनों बाद एक दूसरा सिंह आया और उसके आचरण को देख दंग रह गया। दूसरे सिंह ने उस सिंह शावक को खींच कर अलग किया, एक माँस का टुकड़ा जबरदस्ती खिलाया और जल में उसकी परछाई दिखाई। उससे अपनी समानता ज्ञात करवाया कि तू वास्तव में सिंह है न कि भेड़ तू वनराज है, तू असीम शक्ति का स्वामी है, तू दहाड़ सकता है, तू माँस खाने वाला जीव है न कि नर्म पत्तियाँ तेरा भोजन है। मैं सिंह हूँ, देख मैं तेरे जैसा हूँ और तू मेरे जैसा है, तू भी सिंह है।

हम मनुष्यों की भी यही स्थिति है, हम दूसरों की गुलामी करते-करते आज स्वयं की दुर्बलताओं के गुलाम हो गये है। हमें भी अपने स्वरूप ज्ञान को जागृत करने के लिये स्वामी विवेकानंदजी जैसे दूसरे वनराज की आवश्यकता है। निर्बलता एक निंदनीय अपराध है, निर्बलता राष्ट्र की दुर्गति का कारण बन रही है आज मानव-समाज तथाकथित सभ्यता के चरमोत्कर्ष का दावा

कर रहा है, परन्तु दुर्बल देशवासियों के लिये जीवन दूभर हो रहा है। किसी देश की शक्ति धन, धर्म, वैभव अथवा ऐश्वर्य में भी होती है। परन्तु वह देश वास्तविक रूप से शक्तिशाली तब होता है जब उसके निवासी शक्तिशाली हों, चरित्रवान हों, अनुशासित हों। कह सकते हैं कि महाभारत काल में दुःशासन का द्रोपदी को नंगा करते हुए देखने सभासदों की मात्र विवशता थी, पर आज असंख्य द्रोपदियाँ रोज नंगी की जा रही है, लोगों का मूकवत् देखना अब मात्र विवशता नहीं, स्वीकृति और हिस्सेदारी बनती जा रही है। यह स्थिति इस प्रगतिशील समाज पर जोरदार तमाचा नहीं तो और क्या है? सोचना पड़ता है कि मनुष्य की इस पाशविक निर्बलता को हमें क्या नाम देना चाहिए?

हमारा समाज आज भी विचारकों एवं विद्वानों से भरा पड़ा है, सोचने समझने की शक्ति भी है, जब मोर्चे पर लड़ने की बात आती है तो हम विफल होते है। कारण है हमारे अंदर आत्म शक्ति की कमी, हम अनुशासित नहीं हैं, हमें अपने आत्म स्वरूप का ज्ञान नहीं जिससे हम अपनी निहित शक्ति का प्रकटीकरण करें। हमारे पास ज्ञान है पर क्षणिक जो सिर्फ कुछ पुरस्कार बटोर सकता है लेकिन वास्तविक जिंदगी की सच्चाई से कोसों दूर..... .....।

स्वामी विवेकानंद जी कहते हैं कि वह शिक्षा, शिक्षा नहीं जो व्यक्ति को जीवन संग्राम में एक कुशल योद्धा न बनावे। हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े और हम अपने पैरों पर खड़े होना सीखें। स्वामी जी हमें जागाते हुए कहते हैं जिसमें आत्म विश्वास नहीं है वही नास्तिक है, विश्वास-विश्वास अपने ऊपर और परमात्मा के ऊपर विश्वास यही आत्मोन्नति का एकमात्र उपाय है। हम मनुष्यों में उन्होंने ईश्वर का दिव्यत्व देखा और उद्घोष किया कि "तुम तो ईश्वर की संतान हो, अमर आनन्द के भागीदार हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो, तुम इस मर्त्यभूमि पर देवता हो, तुम भला पापी, मनुष्य का पापी कहना ही पाप है। वह मानव स्वभाव पर घोर लांछन है ! उठो ! आओ ऐ सिहों : इस मिथ्या भ्रम को झटककर दूर फेंक दो कि तुम भेंड़ हो। तुम तो नित्यानंदमय आत्मा हो।" संसार के वीरों को बहुजन हिताय बहुजन सुखाय अपना बलिदान करना होगा। असीम दया और प्रेम से परिपूर्ण सैकड़ों बुद्धों की आवश्यकता है .....सैकड़ों शंकराचार्यों की आवश्यकता है जो अपना आत्मोत्सर्ग कर सकें इस देश के लिये।

स्वामीजी की इन बातों को अपने जीवन में उतारना ही होगा, दुर्बलता का झूठा नकाब उतार कर हमें अपने कार्मों को ईश्वर की ओर प्रवृत करना होगा। यदि हम उसी परमपिता की संतान हैं तो अपने स्वरूप को पहचान कर कार्य करेंगे। जिससे कभी भी हमारे कदम बेताल नहीं होंगे।

अन्यथा स्थिति यदि यही रही तो आने वाली पीढ़ियाँ हमें कभी माफ नहीं करेंगी। ▬

-जय स्वामीजी

विसारियो न हरि नाम

एक बार सन्त सूफियान की महात्मा फजल से मुलाकात हुई और वे दोनों रात भर आपस में बातें करते रहे। दूसरे दिन जब सूफियान वापस जाने लगे, तो उन्होंने महात्मा फजल से कहा, "आपसे अब पता नहीं कब मुलाकात हो। वैसे कल की रात बड़ी अच्छी रही।"

"कल की रात अच्छी नहीं, बुरी रही।" फजल बोले, "आपने कुछ गलत समझ लिया।"

"क्या कह रहे हैं, आप? कल की रात बुरी रही?"-सूफियान ने आश्चर्य से कहा।

"हाँ, मैं सही कह रहा हूँ," फजल ने कहा, "दरअसल आप सवाल कर के अपने दिल की शुबहा को मिटा रहे थे और मैं इस कोशिश में लगा रहा कि आपके सवालों का अच्छा से अच्छा जवाब दूँ। नतीजा यह हुआ कि खुदा की आपको जरा भी याद नहीं रही और मैं भी उसे भूल गया। रात हमारी अच्छी तब कटती, जब हम सवाल-जवाब की बजाय अलग-अलग उसे याद करते।"

रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा में श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी महाराज का कार्यक्रम

छपरा, ७ फरवरी, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के परम उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी महनान्दजी महाराज ने आगामी मई महीने में छपरा (बिहार) पधारने की कृपा पूर्वक अपनी स्वीकृति प्रदान की हैं उनका कार्यक्रम निम्नोक्त है।

पूज्य श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी महाराज बुधवार १० मई २००० को ११ बजे दिन में श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा में पधारेंगे। वे सायंकाल ५ बजे से भक्तों एवं शिष्यों को कृपापूर्वक दर्शन देंगे।

११ मई २००० को पूज्य महाराज जी इच्छुक भक्तों को रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम में प्रातः ८ बजे से दीक्षा प्रदान करने की कृपा करेंगे।

संध्या ६ बजे से पूज्य महाराज जी आश्रम में आयोजित जन-सभा को अपनी आशीर्वाणी प्रदान करेंगे।

१२ मई को सायंकाल ६ बजे से आश्रम में आयोजित जन सभा को पूज्य महाराज जी सम्बोधित करने की कृपा करेंगे और १३ मई २००० को पूज्य महाराज जी छपरा से दिल्ली के लिए प्रस्थान करेंगे।

रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा में

दीक्षा ग्रहण करने के अभिलाषी व्यक्तियों से अनुरोध है कि वे इस सन्दर्भ में आश्रम के सचिव डॉ० केदारनाथ लाभ से अविलम्ब सर्म्पक कर आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त कर लें।

रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर में 'संस्कार धाम' का उद्धाटन

दिनांक २२ फरवरी, २०००। गुजरात के राज्यपाल महामहिम श्री सुन्दर सिंह भण्डारी ने रामकृष्ण मिशन पोरबंदर द्वारा पोरबंदर जिले के बदला ग्राम के तूफान पीड़ितों हेतु नवनिर्मित आवासीय जनपद 'संस्कार धाम' का उद्धाटन करते हुए शिक्षा को मानव मूल्यों से जोड़ने तथा संस्कार से सम्पृक्त करने पर विशेष बल दिया। साथ ही उन्होंने बताया कि ग्रामीण विकास तथा संस्कार निर्माण में इन सामुदायिक भवनों तथा प्रार्थनागृहों का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान है। रामकृष्ण मिशन तथा रामकृष्ण मठ के परम पूजनीय उपाध्यक्ष "श्रीमद् स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज द्वारा इस कॉलोनी के निवनिर्मित प्रार्थना गृह का समर्पण कार्य सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर अपने भाषण के क्रम में उन्होंने बताया कि रामकृष्ण मिशन के सारे सेवा कार्य पूजा भाव से संचालित होते हैं। क्योंकि स्वयं श्रीरामकृष्ण देव "जीव में ब्रह्म की पूजा" (शिवभावे जीव सेवा) का उपदेश दिया करते थे।

समारोह के आरम्भ में श्रीमत् स्वामी निखिलेश्वरानंद जी, सचिव, रामकृष्ण मिशन पोरबंदर ने आगत महात्माओं, राज्य के पदाधिकारियों, ग्रामवासियों तथा इस अवसर पर उपस्थित बृहद् छात्र समुदाय का स्वागत करते हुए लोगों को सूचित किया कि बीस-बीस अवासीय घरों, एक सामुदायिक भवन तथा एक प्रार्थना गृह से युक्त पुनर्वास योजना के अन्तर्गत निर्मित इस कॉलोनी का निर्माण कार्य मात्र पाँच महीनों में २० लाख रूपयों की अधिकतम लागत से सम्पन्न हुआ।

{सम्पूर्ण राशि मुम्बई समाचार पत्र समूह के द्वारा सामान्य जनता से एकत्र की गयी।}

सिद्धार्थ प्रिन्टर्स, साधनापुरी, छपरा ☎-२२५३१

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी. १४-८३

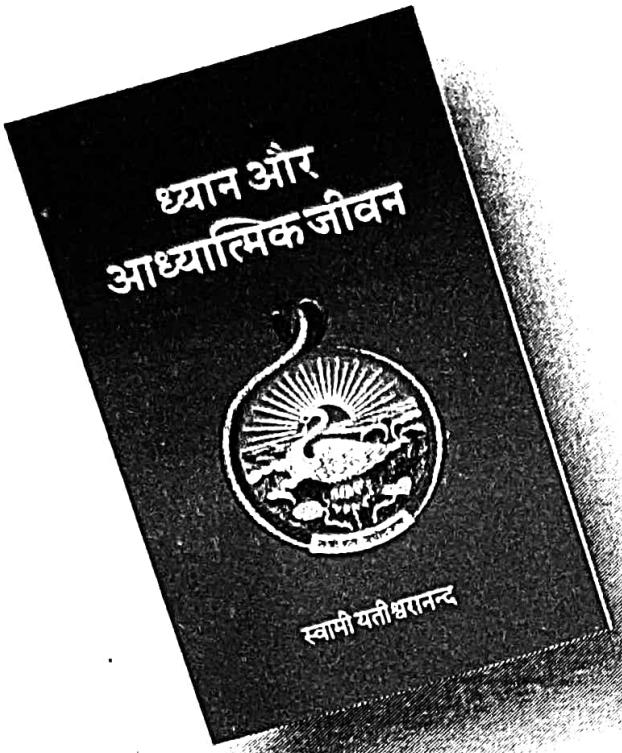

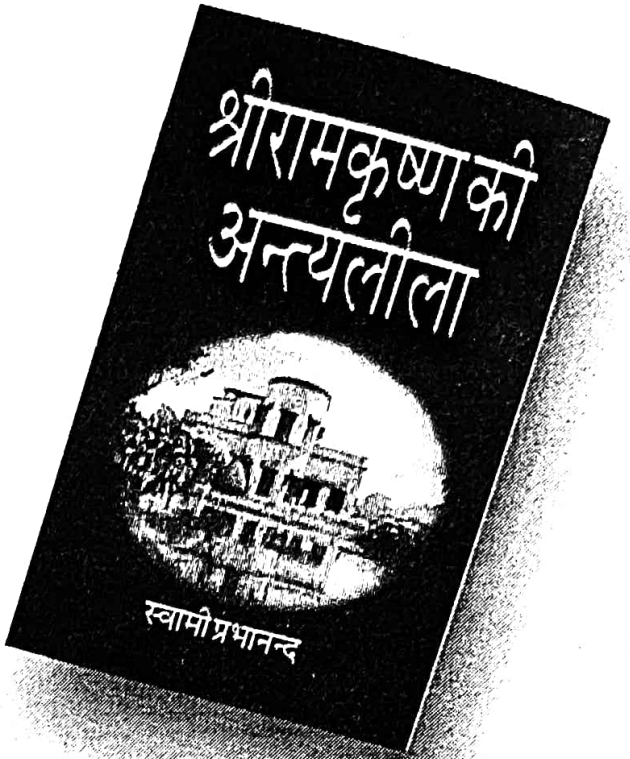

कुछ संग्राह्य पुस्तकें

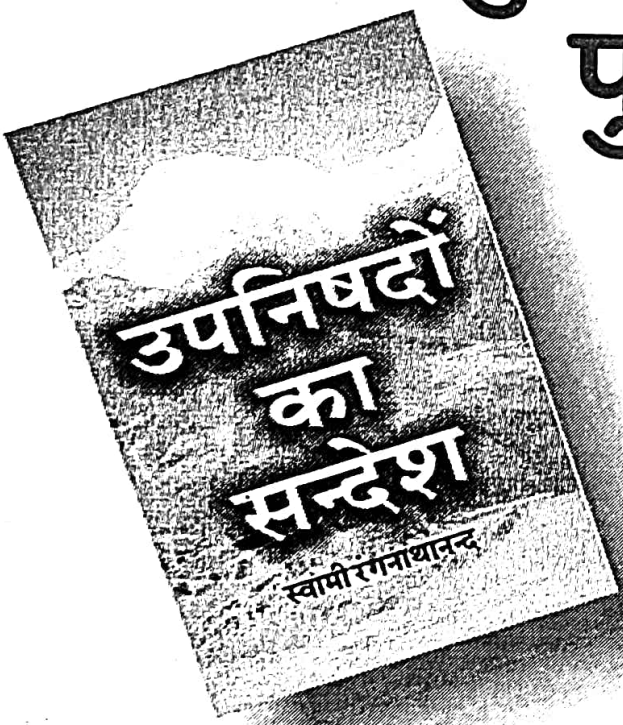

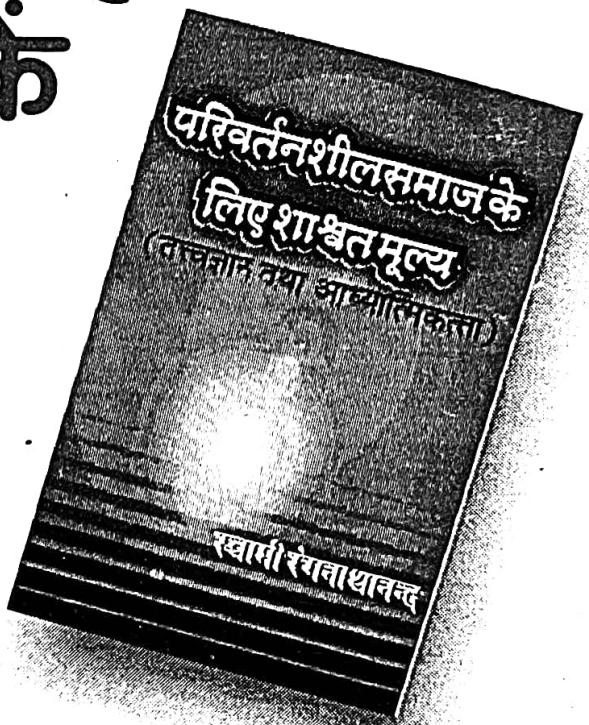

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिण्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित
सम्पादक : डॉ केदारनाथ लाभ